श्रद्धांजलि पुस्तकमाला २८

श्री सत्यनारायण कथा की दिव्य सामर्थ्य

-पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

हमारे नवीन प्रकाशन

प्राणवान प्रतिभाओं एवं जागृत आत्माओं को महाकाल का आह्वान १-००, प्रेमोपहार १-००, युग संस्कार पद्धति १-५०, बोलती दीवारें २-००, कर्मकांड क्यों और कैसे ? ३-००, **RITALS** Why and How ? ५-००, युग यज्ञ पद्धति २-००, अमृत कलश ३-००, राष्ट्र मन्दिर के कुशल शिल्पी ६-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-१) ६-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-२) ५-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-३) ४-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-४) ४-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-५) ५-००, भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्द्धक (भाग-६) ५-००, विचार क्रान्ति के दृष्टा एवं सृष्टा ४-००, सद्विचार, सत्कार्य एवं सत्साहस की सत्य घटनाएँ (भाग-१) ६-००, सद्विचार, सत्कार्य एवं सत्साहस की सत्य घटनाएँ (भाग-२) ६-००, तन विदेशी मन भारतीय (भाग-१) ५-००, तन विदेशी मन भारतीय (भाग-२) ४-००, मनोबल के धनी जिनकी विकलांगता वरदान बन गई (भाग-१) ५-००, मनोबल के धनी जिनकी विकलांगता वरदान बन गई (भाग-२) ५-००, समाज सेवी भारतीय नारी रत्न ५-००, भारत की महान वीरांगनाएँ ५-००, भारतीय इतिहास के कीर्ति स्तम्भ (भाग-१) ५-००, भारतीय इतिहास के कीर्ति स्तम्भ (भाग-२) ५-००, राष्ट्र चिन्तन (भाग-१) ५-००, राष्ट्र चिन्तन (भाग-२) ६-००, आदर्शों की बलिवेदी पर जीवन पुष्प चढ़ाना सीखें (भाग-१) ५-००, आदर्शों की बलिवेदी पर जीवन पुष्प चढ़ाना सीखें (भाग-२) ५-००, गायत्री महायज्ञों का विधि-विधान और मर्म ५-५०, मानवीय चेतना का परिष्कार संस्कार ७-५०, आत्मिक विकास का राजमार्ग ६-५०, पर्व आयोजनों से लोक शिक्षण ६-५०, रामकथा की प्रबल प्रेरणा ७-००, श्री सत्यनारायण कथा की दिव्य सामर्थ्य ६-५०, आंतरिक जीवन में भगवान की पुकार ९-००, गायत्री महामंत्र की व्यावहारिक साधना ९-५०, धर्म चेतना का जागरण और आह्वान ९-५०, प्राण चेतना में महाप्राण का अवतरण ६-००, सजल श्रद्धा ५-०० ।

श्रीसत्यनारायण कथा की दिव्य सामर्थ्य

*
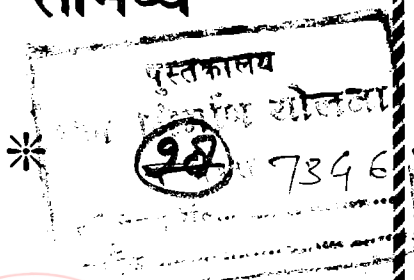
संकलन और संपादन :

पं० लीलापत शर्मा

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा–281003 (उ. प्र.)

थम आवृत्ति १९९५ मूल्य : ६–५० रुपया

श्रीसत्यनारायण कथा की दिव्य सामर्थ्य

श्रीसत्यनारायण कथा का परम्परागत स्वरूप क्या प्रेरणा देता है ? पाँच अध्यायों में कही गई कथा और कथावाचक के प्रवचन—व्याख्यान को गौर से सुनें तो यही कि चाहे जैसे रहें, चाहे जैसे करें, नीति धर्म का पालन करें या अनीति अधर्म से धन कमायें, जीवन व्यवहार में विवेक की कोई आवश्यकता नहीं है । इतना ही पर्याप्त है कि पूर्णिमा को या और किसी उपयुक्त अवसर पर विधि विधान सहित भगवान श्रीसत्यनारायण की कथा कहें—सुनें और उस दिन व्रत उपवास करें । इतना भर निभा लिया जाए, तो न पाप लगता है और न ही कोई अपराध पकड़ में आता है । श्रीसत्यनारायण व्रत की कथा जिस ढंग से कही सुनी जाती है, उसका सार संदेश इसके सिवा कुछ और है ही नहीं ।

लेकिन क्या यही संदेश वास्तविक और उपयोगी है ? कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस संदेश को हास्यास्पद ही बतायेगा । व्रत कथा में आये दृष्टांतों का अभिहित अर्थ इतना ही है । जो लोग प्राचीन साहित्य

और शास्त्रों की उपदेश शैली से परिचित हैं, भलीभाँति जानते हैं कि वास्तविक अर्थ तो गूढ़ ही होते हैं, उनसे जीवन कृत–कृत्य हो उठता है । शास्त्रों की अलंकारिक शैली गूढ़ विषय को सरल, रोचक और बोधगम्य बनाने के लिए है । वह श्रोता या अध्येता की मनोभूमि को उपयुक्त बनाती है, उसमें ग्रहणशीलता विकसित करती है । उस ग्रहणशील चित्रभूमि में प्रखर प्रेरणाओं के बीज बोये जाते हैं तो शील संस्कारों और आध्यात्मिक प्रेरणाओं की उपयुक्त फसल उगती है । श्रीसत्यनारायण कथा की वर्णन शैली को भी इसी रूप में देखना चाहिए और उसके निहितार्थ को समझकर तदनुकूल जीवन ढालना चाहिए ।

कठिनाई यह है कि श्रीसत्यनारायण कथा का गूढ़ स्वरूप और उसे सुन लेने मात्र से तत्काल लाभ मिलने की धारणा इतनी घनीभूत हो गई है कि उसके वेग में गूढ़ अर्थ डूब सा गया है । अनुपयोगी के अंधड़ में उपयोगी के खो जाने से श्रीसत्यनारायण कथा दोहरी मार की शिकार हुई । दोहरी मार इस रूप से कि कोरे श्रद्धालु और भावुक स्वभाव के लोग इससे न जाने क्या–क्या चमत्कारी अपेक्षायें रखने लगे जबकि बुद्धिजीवियों में इन्हीं कारणों से कथा उपहास का विषय बनी ।

परम पूज्य गुरुदेव ने इस कठिनाई को तोड़ा है । अपने चार प्रवचनों में उन्होंने कथा को ऐसा मोड़ दिया है कि वह श्रद्धालु जनों को भी दिव्य प्रेरणाओं से भर

और बुद्धिजीवियों को भी कथा के, उसके संदेश के मूल्य और महत्त्व से अवगत करा दे । अनोखी विशेषता यह है कि इन प्रवचनों में उन्होंने मूल कथा के वर्ण्य विषय को, उसके कथा विस्तार को भी यथावत रहने दिया है । लीलावती-कलावती की जो कथा बुधजनों में उपहास बनी हुई थी, वह अपनी उपयोगिता और महत्त्व के साथ फिर प्रतिष्ठापित हो सकी है । इन प्रवचनों को स्मरण रखते हुए कथा सुनेंगे-गुनेंगे तो श्रीसत्यनारायण का व्रत अपनी समस्त फलश्रुतियों को चरितार्थ करता हुआ वरदायी सिद्ध होगा । यह निश्चय विश्वास किया जा सकता है ।

—प्रकाशक

परम पूज्य गुरुदेव के अनुग्रह-अनुदान

परम पूज्य गुरुदेव का लिखा विपुल साहित्य उपलब्ध है । उनकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या दो हजार के आस-पास पहुँचती है । विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित उनके अनुवाद इस संख्या में नहीं हैं । कदाचित ही किसी मनीषी ने इतना विपुल साहित्य रचा हो । इतिहास के ज्ञात युगों में तो ऐसी कोई विभूति दिखाई नहीं देती । इस साहित्य में पूज्य गुरुदेव ने जीवन के सभी पक्षों को छुआ । कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जिसमें उन्होंने हमारा मार्गदर्शन न किया हो । उनकी लेखनी से निःसृत इस आलोक के अलावा भी एक अमृत और है, जो उनकी वाणी से प्रसरित हुआ है । लाखों लोगों ने उनके सामने बैठ कर इस अमृत का पान किया । ऑडियो-वीडिओ कैसेटों में उसकी झंकार अभी भी कुछ अंशों में सुरक्षित है । कुछ अंशों में इसलिए कि सन् १९५२ से १९९० तक उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह सब का सब रिकार्ड नहीं हुआ । उसका नगण्य-सा हिस्सा ही ऑडियो-वीडियो रीलों में समेटा जा सका । जबकि व्यक्तिगत चर्चाओं, साधना शिविरों और सार्वजनिक प्रवचनों में उन्होंने जो और जितना कुछ कहा वह भी अति महत्वपूर्ण है । उसका उपलब्ध न होना एक अभाव ही है और प्रस्तुत प्रयास उस अभाव को पूरा करने की दिशा में एक विनम्र प्रयास है ।

यह प्रयास "स्वांतः सुखाय" है । बहुत पहले इसे आरंभ हो जाना चाहिए था, पर इसके लिए अपनी कोई शिकायत नहीं है । अपने जीवन में जब भी जो कुछ

घटा, उसे पूज्य गुरुदेव की इच्छा, आकांक्षा और निर्देश से घटा माना और वह अच्छा हो या बुरा, उसी में संतोष किया तो इस विलंब के लिए ही क्यों खिन्न हुआ जाए ? लेकिन इस प्रयास की आवश्यकता और प्रेरणा का उल्लेख किया जाना चाहिए ताकि इसके महत्व को समझा जा सके । प्रयास की प्रेरणा पूज्य गुरुदेव से अपने दीर्घकालिक संबंध, उनके और वंदनीया माताजी के प्रति अपने समर्पण तथा उनके अनुग्रह और महती कृपा से जुड़ी हुई है । व्यक्तिगत या लौकिक जीवन की एक–एक घटना का भी इससे संबंध है और प्रयास की पृष्ठभूमि में उसे भी देखना चाहिए ।

युग निर्माण योजना, गायत्री परिवार और प्रज्ञा अभियान से जुड़े सभी परिजनों से अपना वही संबंध रहा है, जो परिवार में अग्रज और अनुज का होता है । कोई परिजन अपना अग्रज हो सकता है, तो कोई अनुज । यह अंतर स्वाभाविक रूप से किसी परिवार में देखा जा सकता है और अपने युग निर्माण आन्दोलन का संगठनात्मक स्वरूप भी परिवार ही है, तो इतनी वरिष्ठता–कनिष्ठता तो रहेगी ही । सन् १९६७ से हम गायत्री तपोभूमि आए और परिजनों को तब से पूज्य गुरुदेव द्वारा सौंपे दायित्व निभाते दिखाई दे रहे हैं । उसके बाद की अपनी गतिविधियाँ, उपलब्धियाँ और त्रुटियाँ प्रायः सभी स्वजनों की जानकारी में हैं । लेकिन जो अपरिचित हैं और तपोभूमि में आने से पूर्व का जो जीवन क्रम है, वह भी पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के स्नेह अनुदानों से परिपूर्ण रहा है । पिछले जीवन की ओर मुड़कर देखते और उसकी उपलब्धियों–सफलताओं की समीक्षा करते हैं, तो पाते हैं कि उनकी कृपा आरंभ से ही अपने पर बरसती रही है । यह बात अलग है कि उसका आभास आगे चलकर

हुआ । यदि उनकी कृपा सुलभ न रही होती तो सफलता की सीढ़ियाँ दर सीढ़ियाँ पार करते चले जाना कदापि संभव नहीं होता और सफलताएँ भी सामान्य स्तर की नहीं असामान्य स्तर की । तपोभूमि आने से पूर्व लौकिक जीवन में इतनी उपलब्धियाँ हासिल हुईं कि धन–कुबेरों और यशस्वी परिवारों में जन्म लेने वाले सफलतम व्यक्तियों से सहज ही तुलना की जा सके । तुलना करने पर वे उपलब्धियाँ इक्कीस ही साबित होंगी उन्नीस नहीं । उन सफलताओं के साथ पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के स्नेहाशीष ने आंतरिक जीवन को भी कृत–कृत्य किया ।

आज पीछे मुड़कर देखते हैं तो पाते हैं कि जीवन का आरंभ जिस स्थिति में हुआ था वहाँ से आगे बढ़ना सामान्य परिस्थितियों में संभव ही नहीं था । एक साधारण ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ, भरतपुर रियासत (अब राजस्थान का एक जिला) के एक गाँव में । वैसे ही परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं, तिस पर भाग्य ने जैसे आरंभ से ही खिलवाड़ करने की ठानी हुई थी । जन्म लेने के कुछ समय बाद ही माता का स्वर्गवास हो गया । तब अपनी अवस्था साल डेढ़ साल की थी और इस अवस्था में माँ का आश्रय छिन जाए तो शिशु का जीवन और अस्तित्व किन संकटों से ग्रस्त हो उठता है, इसकी कल्पना ही की जा सकती है । पिता का संरक्षण भी ज्यादा नहीं रहा । आठ–दस साल की आयु में वह भी अपने से छिन गया । इस संसार में अब अपना अस्तित्व एकाकी और असहाय था । भाई–बहिन कोई थे नहीं कि उनका सहारा मिलता । ऐसे कोई निकट संबंधी भी नहीं थे कि उनसे सहयोग की आशा की जा सके । निर्वाह के लिए अपने पैरों पर खड़े होने की तभी कमर कस ली । इधर–उधर ढूँढ़–खोज की

और लोगों को अपनी श्रम निष्ठा का वास्ता दिया। और तो क्या था, जिसे योग्यता और गारंटी के तौर पर बताया जा सकता था। जो काम सौंपेंगे उसे पूरी मेहनत से करने और शिकायत का कोई मौका न आने देने की गारंटी आखिर एक जगह काम आई और अपने को छोटी-सी नौकरी मिली। जो वेतन तय हुआ अत्यल्प ही था और उसके लिए दिन भर काम में लगे रहना पड़ता। यहाँ तक कि भोजन बनाने का समय भी नहीं मिलता। इसके लिए बाजार के भोजनालय पर ही निर्भर रहना पड़ता। इस तरह गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी।

अपने ब्राह्मण होने का बोध तो आरंभ से ही था। जीवन यापन के लिए दौड़-धूप करते हुए लोगों से संपर्क हुआ तो उनमें से कुछ जाने माने लोगों से थोड़ा-बहुत जानने-समझने को भी मिला। ऐसे ही संपर्क के क्षणों में जाना कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत भी होना चाहिए। ब्राह्मणत्व की प्रारंभिक सिद्धि यज्ञोपवीत से ही होती है। विद्वत्ता अर्जित करने के लिए जैसे अक्षर ज्ञान आरंभिक अनिवार्यता है, उसी प्रकार ब्राह्मणत्व की सीढ़ी यज्ञोपवीत से आरंभ होती है। यह जानने के बाद मन यज्ञोपवीत संस्कार के लिए कसमसाने लगा, लेकिन विवशताएँ भी कम नहीं थीं। वे रास्ता रोके आड़े आ रही थीं। उस जमाने में यज्ञोपवीत संस्कार बेहद खर्चीले थे। ब्याह-शादियों जैसा आयोजन होता था, उसी तरह सगे-संबंधी इकट्ठे होते, धूमधाम होती और भोज आदि दिए जाते। यहाँ स्वयं की स्थिति ही अकिंचन थी, सो ऐसे आयोजन की व्यवस्था कहाँ से बनती। व्यवस्था बनना तो दूर रहा, उसकी कल्पना तक करना अपने लिए विलास था, लेकिन मन भी हुलसता था। ब्राह्मण पुत्र है, तो यज्ञोपवीत तो होना ही चाहिए। नहीं हुआ

तो द्विजत्व नहीं मिलेगा और द्विज नहीं हुए, तो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी जीवन वृथा ही रहेगा । इस चिंतन से मन बड़ा खिन्न रहता और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना चलती रहती कि तू ही रास्ता दिखा ।

उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलन उफान पर था । एक से एक मनस्वी और तेजस्वी लोग भारत माता के पैरों में पड़ी परतंत्रता की बेड़ियाँ काटने के लिए संघर्ष रत थे । जहाँ इस आंदोलन की चिनगारी नहीं पहुँचती थी, वहाँ दूसरे ग्राम-नगर के लोग आंदोलन के बीज बो जाते थे । भरतपुर में कोई स्थानीय प्रेरणा नहीं थी, तो वहाँ आगरा से पण्डित रेवतीशरण आ गए और उन्होंने लोगों में स्वातंत्र्य चेतना जगाने का अभियान शुरू किया । पण्डितजी की सनातन धर्म के क्षेत्र में भी अच्छी प्रतिष्ठा थी और वे आंदोलनकारियों को देश सेवा के लिए प्रेरित करने के साथ धर्म, अध्यात्म विषयों पर भी उद्‌बोधन देते थे । जी को लगा कि शायद उनके पास जाने से कोई रास्ता निकल आए । सोचा कि उनके पास जाकर अपनी समस्या कहें और एक दिन थोड़ी हिम्मत बटोरकर पण्डितजी के पास पहुँच गए । डरते-सकुचाते उनके सामने अपनी व्यथा रखी । अपनी स्थिति से भी उन्हें अवगत कराया । सब कुछ सुनकर पण्डितजी कुछ देर चुप रहे और फिर बोले-कल सुबह धोती पहनकर आ जाना । मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत संस्कार कराऊँगा । सुनकर मन बाग-बाग हो गया, जैसे मुँहमाँगी मुराद मिल गई । अगले दिन जैसे बताया था वैसी ही तैयारी के साथ उपस्थित हुआ । पण्डितजी ने विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न कराया और गायत्री मंत्र की दीक्षा दी । उद्‌बोधन के इस अवसर पर उन्होंने तीन बातें गाँठ बाँधने के लिए कहा । इनमें एक बात श्रमशील बने रहने की थी । कहा-श्रम से कभी जी न

चुराना । श्रम देवता है, इसकी जितनी आराधना करोगे, उतना ही यह प्रसन्न होगा और जीवन को धन्य बनाएगा । दूसरी शिक्षा ईमानदारी की थी । कहा—ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ जीवन नीति है । इसे अपनाने वाले निश्चित रूप से सफल होते हैं । आरंभ में कुछ लोग घाटे में रहते भले ही दिखाई दें, लेकिन वस्तुतः वह घाटा नहीं होता, अनभ्यस्त परिस्थितियों से आने वाली कठिनाइयाँ ही होती हैं । कुछ ही समय बाद वे अपने आप दूर हो जाती हैं और ईमानदारी का परिणाम मिलने लगता है । तीसरी बात उन्होंने योग्यता बढ़ाते रहने के संबंध में कही और बोले कि यही उन्नति का मार्ग है । योग्यता बढ़ाते रहें तो श्रमशील बनने और ईमानदारी बरतने के परिणाम दिन दूने रात चौगने फलते फूलते जाएँगे । इन तीनों में से एक भी शिक्षा कम महत्त्व की नहीं है । तीनों व्रतों का पालन किया जाना चाहिए, जीवन तभी धन्य बनेगा । पण्डितजी की ये बातें गाँठ बाँध लीं और आगे का जीवन इन्हीं व्रतों का पालन करते हुए बिताने की तैयारी में जुट गए ।

यज्ञोपवीतधारी द्विज को प्रतिदिन नियमपूर्वक संध्या—वंदन और गायत्री का जप भी करना चाहिए । यह बताते हुए पण्डितजी ने गायत्री उपासना की विधि सिखा दी और कम से कम तीन माला गायत्री जप करते रहने के लिए कहा । जप के समय सूर्य के रूप में सविता देवता की ध्यान धारणा करने और परमात्मा से सद्गुणों का, सत्कर्मों का और सद्बुद्धि का प्रसाद ग्रहण करने के लिए भी उन्होंने कहा । यह क्रम अपना लिया गया । संध्या, गायत्री जप की प्रक्रिया तो कुछ ही समय में संपन्न हो जाती, लेकिन उस अवधि में की गई प्रार्थना भावना का ध्यान पूरे दिन रहता । दफ्तर में और दफ्तर के बाहर सभी से मिलजुल कर रहने, सहयोग

सद्भाव बरतने की नीति अपनाई । अपने से बड़े हों या छोटे, जब भी जिसने जिस काम या सहयोग के लिए कहा, उसके लिए सदैव प्रस्तुत रहे । कभी किसी का अहित नहीं किया और न चाहा । इस नीति ने अपने को सभी का प्रिय पात्र बना दिया ।

दफ्तर में एक पण्डितजी एकाउन्टेंट थे । उन्होंने अतिरिक्त सद्भाव दर्शाया और कहा कि पढ़ना शुरू करो । कौन पढ़ाए ? अपनी समस्या बताई तो कहा सुबह-शाम जब भी सुविधा हो घर पर आ जाया करो । एक घण्टा रोज पढ़ा दिया करेंगे । इस अवसर को वरदान की तरह समझा और अगले दिन से पढ़ने जाने लगे । समय से कुछ पहले ही उनके घर पहुँचना होता और खाली समय में उनके घर का कोई छोटा-मोटा काम कर दिया करते । उनकी गृहिणी का स्नेह भी प्राप्त हुआ और वे भोजन के समय भी घर ही रहने के लिए कहतीं । अपने पुत्र की भाँति रखने लगीं और माँ की तरह भोजन बनाकर खिलातीं । लाड़-दुलार करतीं । घर रहकर अध्ययन का क्रम तो चलता ही रहा । धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बन गई कि दफ्तर के लोगों ने एक स्वर से अधिकारियों को हमारे बारे में बताया । हमारी तरक्की ऊँचे पद पर करने के लिए कहा और अधिकारियों ने उनकी बात मानकर उस समय मिल रहे वेतन से दो-गुने अधिक वेतन वाले पद पर प्रमोशन कर दिया । अब सुविधा और दायित्व दोनों ही पूर्वापेक्षा अधिक थे । दायित्वों का निर्वाह अपनी पूरी योग्यता और मनोयोग से करने का व्रत यहाँ भी बराबर निभता रहा ।

नौकरी में अपना मन देर तक लगा नहीं रह सका । प्रतीत हुआ कि इसमें उन्नति के अवसर सीमित ही हैं । उन्नति का अर्थ तब लौकिक उन्नति ही ज्यादा

समझ आता था और उसके लिए मन में छटपटाहट बनी रहती थी । ऐसा अवसर भी आया और राशनिंग विभाग ने भरतपुर में गल्ला वितरण का जिम्मा लिया । उन दिनों क्षेत्र में अकाल पड़ा था और बाजार में दूसरे महायुद्ध से पहले की मंदी अलग छाई हुई थी । चीजों के दाम बेतहाशा बढ़ रहे थे, अर्थव्यवस्था बुरी तरह लड़खड़ा रही थी । उस विपदा की मार लोगों पर कम पड़े, इसके लिए राशनिंग व्यवस्था की गई । उस जमाने के लोग उस समय को आज भी कंट्रोल का जमाना कह कर याद करते हैं । राशनिंग विभाग ने जो जिम्मा सौंपा था या यों कहें कि जो बीड़ा हमने उठाया था, वह कुशलता और प्रामाणिकता के साथ संपन्न हुआ । इसका लाभ भी मिला । व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में अपनी साख बनी ।

नदवई (भरतपुर) में शुरू किया गया व्यापार दिनोंदिन बढ़ने लगा । परिस्थितियों ने कुछ ऐसी करवट ली कि नदवई में अपना व्यापार समेट कर बाजार में लेनदारों की पाई–पाई चुका कर डबरा चले गए । वहाँ मिल उद्योग में जाने का निश्चय किया, तो पता चला कि उद्योग से जुड़े लोग हाथों–हाथ ले रहे हैं । नदवई के व्यापारियों ने हमारी साख हमारे यहाँ आने से पहले ही पहुँचा दी थी । कुछ मिल मालिकों से तो पुराना संबंध भी था । शायद वह भी एक कारण रहा कि सभी ने मिल कर इस व्यवसाय में हमारा स्वागत किया । डबरा में तब चालीस मिल थे । मिल मालिकों ने प्रस्ताव किया कि ऐसोसिएशन का अध्यक्ष पद संभालें । यह दायित्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण था । चालीस मिलों में सामंजस्य रखना और किन्हीं भी दो या अधिक प्रतिष्ठानों में कड़वाहट न आने देना, कड़वाहट आ जाय तो उसका निवारण करना साथ ही उद्योग पर

आने वाले बाहरी संकटों का हल भी ढूँढ़ना इस पद का दायित्व था । साथी प्रबन्धकों और मिल मालिकों ने अपने को इस योग्य समझा और विश्वास किया तो हमने भी ठान लिया कि उस विश्वास का निर्वाह करना अपना धर्म कर्तव्य है । धर्म कर्तव्य का पालन हर हालत में होना चाहिए और अगर यह चुनौती है तो उसे भी स्वीकार करना चाहिए । चुनौती भरी स्थितियों से मुँह मोड़ना कभी जाना नहीं था । वे स्थितियाँ अपने को और भी ज्यादा प्रेरित करतीं, उत्साह भरतीं और संकल्पवान बनाती थीं, सो अध्यक्ष पद का दायित्व खुशी–खुशी स्वीकार कर लिया ।

परमपूज्य गुरुदेव तब मथुरा में युग निर्माण आंदोलन का उद्घोष कर चुके थे । गायत्री तपोभूमि का निर्माण तब शुरू ही हुआ था । गायत्री उपासना का प्रचार, यज्ञ अभियान और सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के कार्यक्रम चलने लगे थे । मिशन का तब युग निर्माण योजना नामकरण शायद नहीं हुआ था । पूज्य गुरुदेव तब विशुद्ध अध्यात्म पर ही ज्यादा जोर देते थे । मिशन के उस प्रकट प्रारंभिक दौर में गुरुदेव से संपर्क हुआ । प्रथम परिचय अत्यंत सहज और सामान्य स्तर का था । लेकिन जब वह संपन्न हो गया, तो लगा कि इस दिव्य विभूति की कृपा अनुकंपा तो न जाने कब से अपने पर बरसती रही है । हालांकि प्रकट तौर पर संपर्क संबंध धीरे–धीरे ही प्रगाढ़ होते गए ।

पहला परिचय डबरा में गायत्री महायज्ञ के समय हुआ । स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने मिलकर यज्ञ का आयोजन किया था । उसके प्रबन्ध के लिए सहयोग चाहा था और स्वयं कुछ पहल करने के साथ मिल उद्योग एसोसिएशन के प्रेसीडेंट के नाते डबरा के सभी उद्योगपतियों को हमने एक पत्र लिखा तो अपेक्षा से छः

गुना ज्यादा साधन जुट गए । मिल मालिकों ने न केवल सहयोग किया बल्कि पूज्य गुरुदेव की अगवानी करने स्टेशन तक भी गए । पूज्यवर का तब तक प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुआ था और जैसा अब तक सुना जाता था या गुरु नामक संत–साधु जनों को देखा था, उसीसे पूज्यवर की एक काल्पनिक छवि ही मन में बना रखी थी । उस छवि के अनुसार गुरुदेव भगवा वेशधारी, सन्यासी होने चाहिए, लंबी दाढ़ी–मूँछ और सिर पर जटा जैसे बाल होने चाहिए, माथे पर तिलक, हाथ में कमण्डल और माला रहने चाहिए । ऐसी कितनी ही विशेषताएं इस छवि के साथ जुड़ी हुई थीं । जब गाड़ी आई और यात्री उतरे तो अपनी आँखें इस छवि वाले गुरुदेव को ढूँढ़ती रहीं । वह आकृति कहीं दिखाई नहीं दी, तो कार्यकर्त्ताओं से कहा कि गुरुदेव नहीं आए । कार्यकर्त्ताओं ने कहा कि गुरुदेव आ गए हैं–यह रहे । देखा साधारण धोती–कुर्त्ता पहने, साधारण दर्जे के डिब्बे से उतर कर आए, साथ में थोड़ा–सा सामान लिए खड़े भद्र पुरुष की ओर वे संकेत कर रहे हैं । यकायक विश्वास ही नहीं हुआ कि जिनके लिखे शब्द मन–प्राण को तरंगित करते रहे हैं, वे पूज्य गुरुदेव यही होंगे । "अखण्ड ज्योति" और पूज्य गुरुदेव के साहित्य से तब कुछ ही समय पहले परिचय हुआ था और उसे पढ़कर लेखक की मेधा, साधना, चिंतन और सूक्ष्म दृष्टि ने भीतर तक झकझोर कर रख दिया था । लेखनी के उस धनी मनीषी के आगे साहित्य देखकर ही नतमस्तक हो जाना पड़ा था । गुरुदेव के संबंध में वह प्रभाव भी था और अब कार्यकर्त्ता जब बता रहे थे कि यह रहे गुरुदेव तो अभिभूत होने का एक और प्रसंग बन गया था । अब तक उन्हें महान लेखक के रूप में जाना था । सामने खड़े गुरुदेव को देखकर सादगी में छिपी

उनकी महानता के दर्शन हुए । उनके प्रवचन सुनकर, वार्त्ताओं में भाग लेकर महसूस किया कि इस युग के महान विचारक को सुनने का अवसर मिल रहा था ।

यज्ञ कार्य संपन्न हो गया । गुरुदेव से प्रत्यक्ष परिचय भी थोड़ा प्रगाढ़ हुआ और उन्होंने कभी समय निकाल कर मथुरा आने के लिए कहा । उनका आमंत्रण मन को आदेश की तरह बाँध गया लेकिन अब तक का अभ्यस्त स्वभाव बाधक भी हो रहा था । गुरुदेव के संबंध में सोचते, उनका स्मरण आते समय कई बार इस तरह के भाव भी आते कि धर्म—अध्यात्म की उस दुनियाँ से वास्ता क्यों रखें, जो अपना ऐश—आराम का जीवन छोड़ने और सादगी का जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हो । गुरुदेव की सादगी ने प्रभावित किया था जरूर, लेकिन उसे स्वयं भी अपनाया जाए, ऐसी कोई इच्छा—आकांक्षा नहीं थी । "अखण्ड ज्योति" तब नियमित रूप से पढ़ी जाने लगी थी । हर महीने उसकी आतुरता से प्रतीक्षा रहती और जब वह मिल जाती, तो उसे आद्योपांत पढ़ लेने तक चैन नहीं मिलता था । "अखण्ड ज्योति" के अलावा उनकी लिखी पुस्तकें भी एक—एक कर पढ़ लीं और पढ़ने से ज्यादा गुन लीं । उनकी प्रेरणाओं को आत्मसात् करने लगे—अपने व्यवहार में उतारने की चेष्टा करने लगे । इस प्रकार पूज्य गुरुदेव की प्रेरणाओं से संस्कारित होने का क्रम चल पड़ा ।

समय निकाल कर एक दिन मथुरा गए । घीया मण्डी स्थित पूज्य गुरुदेव के निवास "अखण्ड ज्योति" कार्यालय पहुँचे, तो वंदनीया माताजी से भेंट हुई । माताजी से यह प्रथम परिचय था । गुरुदेव तब थे, तो मथुरा में ही पर कार्यालय में नहीं थे । अतः वंदनीया माताजी से ही बातचीत करने लगे । माताजी ने बातचीत

में कुशलक्षेम ही पूछा और उसके तुरंत बाद भोजन का प्रबंध करने रसोई में चली गयीं । अपने हाथ से भोजन तैयार किया और जैसे माँ सामने बैठकर बच्चे को भोजन कराती है, उसी प्रकार स्नेह से भोजन कराने लगीं । यह वृत्तांत कहने, लिखने में जितना आसान है, अनुभव करने में उतना ही गूढ़ भी है । हमने तो कभी जाना भी नहीं था कि माँ का प्यार कैसा होता है ? बचपन में अपनी उम्र के बच्चों से ही सुना-जाना था कि माँ ऐसे लाड़-लड़ाती है और माँ वैसे दुलार करती है । सुन-सुनकर उन बच्चों के भाग्य से ईर्ष्या होती थी और अपने आप से ग्लानि भी । ऐसे कई प्रसंग आँखों के सामने से चलचित्र की भाँति घूम गए, जब अपने को माँ का अभाव खला था और उस खलने को एकांत में जाकर रो-रोकर हल्का किया था । उन सारे प्रसंगों में हुई पीड़ा को माताजी के प्रथम संपर्क ने जैसे धो-पोंछ दिया और लगा कि कौन कहता है कि अपनी माँ नहीं है । माँ यह सामने बैठी तो है । जन्म के बाद से तब तक अनुभव होती रही माँ की कमी कुछ ही पलों में समाप्त हो गई और तरसते पुत्र को माँ का स्नेह, वात्सल्य मिला । मजे की बात यह है कि कुछ देर बाद गुरुदेव आ गए, तब उन्होंने माताजी को हमारे बारे में बताया । इससे पहले हम अपना सामान्य परिचय, नाम, गाँव आदि ही बता पाए थे ।

गुरुदेव ने बातचीत के दौरान बताया कि वे सहस्रकुण्डीय गायत्री महायज्ञ करने जा रहे हैं । महायज्ञ गायत्री तपोभूमि के क्षेत्र में होना है और उस अवसर पर तुम्हें भी आना है । गुरुदेव ने अब तक बुद्धि चेतनाको प्रभावित किया था, कुछ देर पहले माताजी के स्नेह, ममत्व ने अपनी भाव श्रद्धा को भी समर्पित करा लिया । गुरुदेव ने सहस्रकुण्डीय यज्ञ में समय से पहले

आने के लिए कहा तो न करने का कोई प्रश्न ही नहीं था । समय से पूर्व ही मथुरा पहुँच गए और निवेदन किया कि काम बताया जाए । गायत्री महायज्ञ अति विशाल था । बताया गया था कि इसमें लाखों लोगों को निमंत्रण भेजे गए हैं । सब नहीं आए, तो भी पाँच लाख लोगों का आना निश्चित है । इतने बड़े आयोजन में स्वयंसेवकों की एक पूरी फौज चाहिए । पता नहीं इस संबंध में क्या तैयारी हुई है । लेकिन स्वयं भी उस फौज का एक सदस्य होना चाहिए । यह सोच कर अपने आपको प्रस्तुत कर दिया । पूज्य गुरुदेव ने कहा—तुम आयोजन का हिसाब—किताब देखना । जिसे जहाँ खर्च की जरूरत पड़े, उसकी पूर्ति करना और जहाँ से जो सहयोग प्राप्त हो उसे संभालना ।

हिसाब लगाकर देखा, महायज्ञ में पाँच लाख लोग आएगे । ये लोग चार दिन रहेंगे । चार दिन तक दो समय भोजन करेंगे और एक व्यक्ति पर एक समय के भोजन का खर्च दो रुपया भी मानें तो सिर्फ भोजन पर ही चालीस लाख रुपए खर्च होगा । उन्हें ठहराने, यज्ञ कराने, पण्डितों को दक्षिणा देने, आयोजन स्थल की व्यवस्था करने और दूसरे खर्च तो इस सब के अलावा थे । जो पैसा आया था, वह टैन्ट वालों को दे दिया, चिन्ता हुई कि बाकी का इंतजाम कहाँ से होगा ? गुरुदेव के सामने इसकी चिंता रखी तो उन्होंने बड़ी सहजता से कहा—इसकी चिन्ता हम क्यों करें ? यह काम भगवान का है, भगवान ही इसका प्रबन्ध करेंगे और सचमुच भगवान ने प्रबंध किया । चार दिन का यह विराट आयोजन—अभिनव महाकुंभ इतनी कुशलता से संपन्न हो गया कि जिन लोगों ने उसमें भाग लिया वे आज भी "न भूतो न भविष्यति" कहते हुए उसका गुणगान करते नहीं थकते हैं । गुरुदेव के व्यक्तित्व का भागवत पक्ष यहीं

हमारे सामने खुलकर आया । यह आस्था गहराई तक जड़ जमा गई कि पूज्य गुरुदेव व्यक्ति नहीं शक्ति हैं । स्वयं भगवान उनके रूप में अवतरित हुए हैं । एक समय में जो राम थे और एक युग में जो कृष्ण थे, वही भगवान समन्वित रूप से उनके कलेवर में प्रकट हुए हैं । अपनी मान्यताओं में यह चौथा मोड़ था । पहले हमने गुरुदेव को एक महान लेखक के रूप में जाना, फिर उन्हें क्रान्तिकारी विचारक के रूप में समझा, फिर वे भारतीय संस्कृति के जीते–जागते प्रतीक लगे और अब वे साक्षात् भगवान के रूप में दिखाई दिए ।

पूज्य गुरुदेव का भाष्य किया हुआ आर्ष साहित्य तब तक प्रकाशित हो चुका था । इस साहित्य का एक सैट उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल विश्वनाथदास को भेंट किया गया । राज्यपाल महोदय गायत्री तपोभूमि आए हुए थे और उनकी आवभगत में हम भी लगे हुए थे । तपोभूमि और उनके संस्थापक अधिष्ठाता पूज्य गुरुदेव से वे बहुत प्रभावित हुए । जाते–जाते उन्होंने कहा कि 'हम यहाँ भगवान कृष्ण की नगरी में तीर्थ दर्शन करने आए । भगवान के साक्षात् दर्शन तो नहीं हुए, पर आपको देखकर आप में भगवान कृष्ण के दर्शन अवश्य हो गए ।' राज्यपाल महोदय की यह टिप्पणी सुनकर अपनी आस्था और पुष्ट हुई कि पूज्य गुरुदेव व्यक्ति नहीं शक्ति हैं, वे साक्षात् भगवान हैं ।

इसके बाद गुरुदेव के सान्निध्य में दिनों दिन अपने आपको घुलाने–मिलाने की तत्परता बढ़ने लगी । शिविर आयोजनों का क्रम महायज्ञ के बाद ही चला । प्रत्येक शिविर में उपस्थित होने की चेष्टा होती और इस चेष्टा में कदाचित ही कोई शिविर वर्ग छूटा हो । जातीय सम्मेलन, नवरात्रि साधना, पंच कोशी साधना, शिक्षा सम्मेलन, स्वास्थ्य–आयुर्वेद–प्राकृतिक चिकित्सा, योग,

सूर्य चिकित्सा, संस्कार शिविर, गीता शिविर, रामायण शिविर, भागवत सत्र आदि कितने ही वर्गों की शिविर श्रृंखला चली और प्रत्येक वर्ग में सम्मिलित रहने का अपना क्रम भी बना रहा । पूज्य गुरुदेव के साधना कक्ष में जल रहे अखण्ड दीपक से प्रभावित होकर हमने भी अपने घर में अखण्ड दीपक की स्थापना की थी । अज्ञातवास से लौटने के बाद गुरुदेव ने हमें जब गायत्री तपोभूमि आने का आदेश दिया तो उसकी तैयारी में वह अखण्ड दीपक भी गुरुदेव ने अपने कक्ष में स्थानांतरित कर लिया । शिष्य की चेतना जिस प्रकार गुरु की चेतना से तदाकार होनी चाहिए उसी के प्रतीक रूप में उस दीपक की ज्योति गुरुदेव के साधना कक्ष में जलने वाली ज्योति में समा गई । स्वतंत्र रूप से दीपक कोई दस वर्ष तक प्रज्ज्वलित रहा था ।

मथुरा आनेकी तैयारी के दिनों में अच्छी तरह याद है कि गायत्री तपोभूमि में शिविरों की श्रृंखला अनवरत चलने लगी थी । लेकिन तब शिविरार्थियों की संख्या सीमित ही रखी जाती थी । एक शिविर में सौ--पचास परिजनों को लिया जाता था । संख्या जानबूझ कर सीमित रखी जाती थी । साधक तब गायत्री तपोभूमि में ठहरते थे । पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी प्रतिदिन प्रातः अखण्ड ज्योति कार्यालय से तपोभूमि आते । पूज्य गुरुदेव एक घण्टे का प्रवचन करते । प्रवचन से पहले वंदनीया माताजी संगीत देतीं । प्रवचन समाप्त होने के बाद सभी साधक गुरुदेव के निवास पर जाते और वहाँ भोजन कर वापस लौटते । साधकों के साथ तपोभूमि से चलकर अखण्ड ज्योति तक गुरुदेव के साथ जाना और वापस लौटना एक अनूठे अनुभव से गुजरना था । लौटकर हम लोग भावी कार्यक्रमों और योजनाओं पर विचार विमर्श करते थे ।

सन् १९६७ में हम स्थाई रूप से मथुरा आ गए । पूज्य गुरुदेव के हरिद्वार जाने की तैयारी चलने लगी थी । तय हुआ था कि बाद में उनके प्रवासीय कार्यक्रम लगभग नहीं होंगे । देश भर में फैली युग निर्माण परिवार शाखाओं में इसीलिए होड़ मची हुई थी कि पूज्य गुरुदेव शांतिकुंज में एकान्त वास से पहले एक बार उनके यहाँ अवश्य आएँ । इस कारण देश भर से गायत्री महायज्ञ और युग निर्माण सम्मेलनों के प्रस्ताव आते । यथा सुविधा उनकी स्वीकृति और व्यवस्था दी जाती । इन आयोजनों में प्रायः गुरुदेव के साथ जाना होता तब यह कल्पना भी नहीं थी कि इस प्रकार साथ रहकर वे अपने परिवार से मिला-जुला और परिचय करा रहे हैं । मथुरा आने से पूर्व हम अपने पारिवारिक दायित्वों को लगभग पूरा कर चुके थे । एक पुत्री का विवाह काफी समय पहले ही हो गया था । दो पुत्र थे-उन्हें स्वावलंबी बनने की राह पर लगा दिया । विवाह दोनों में से एक का भी नहीं हुआ था ।

मथुरा आने के बाद यह इच्छा तो बनी ही रही कि दोनों का विवाह कर दें । बड़ा पुत्र राम था, छोटे सतीश का विवाह तो बाद में होता रह सकता है, राम का तो हो ही जाए । इस संबंध मे गुरुदेव से निवेदन किया तो उन्होंने न जाने क्या सोचकर कहा कि राम का विवाह रहने दो । शादी करना हो तो सतीश की कर दो । राम बड़ा था, बड़ा पुत्र क्वांरा ही रहे और छोटे की शादी पहले कर दें, कुछ समझ में नहीं आया । हवाला भी दिया कि लोग क्या कहेंगे ? राम की शादी नहीं की और छोटे की शादी कर दी । अपनी बात गुरुदेव के सामने बार-बार रखी और हर बार वे यही कहते ।

सन् १९७१ में पूज्य गुरुदेव के विदाई समारोह की,

तैयारियाँ चल रही थीं । इसी समारोह में आदर्श विवाह भी संपन्न होने थे । आदर्श विवाहों का निर्धारण हो ही रहा था कि हमने इस बार फिर निवेदन कर दिया । कहा कि गुरुदेव राम की शादी भी इसी अवसर पर करवा दीजिए । हमारी बड़ी इच्छा है । वंदनीया माताजी वहीं विराजमान थीं । उन्होंने कहा ठीक है, राम का आदर्श विवाह कर दो । मेरी निगाह में लड़की भी है । मृत्युंजय (पूज्य गुरुदेव के पुत्र) की साली इन्दिरा से संबंध तय समझो । राम भी वहीं मौजूद था । और जून १९७१ में दोनों का विवाह संपन्न हो गया । पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के आशीर्वाद से बनी यह युगल जोड़ी देखकर हम पति–पत्नी अपने भाग्य पर इठलाने लगे ।

विदाई समारोह में पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी को मथुरावासियों ने भारी मन से विदाई दी । उस समारोह में गुरुदेव ने घोषित किया था कि लीलापत को हम अपने मिशन का संगठनात्मक उत्तराधिकारी घोषित किए जा रहे हैं । सब लोग उन्हें अपना बड़ा भाई समझें । अपने व्यक्तिगत पत्रों और निजी चर्चाओं में तो उन्होंने यह बात अनेक बार दोहराई थी । विदाई से पहले लगभग तीन साल क्षेत्रों में गायत्री महायज्ञ और युग निर्माण सम्मेलनों के धुआँधार आयोजन हुए । इनमें प्रायः सभी में गुरुदेव के साथ रहना हुआ । कार्यकर्त्ता गोष्ठियों में वे परिचय कराते और कहते कि हमारे बाद संगठन का काम लीलापत ही देखेंगे । सन् १९७१ में गायत्री जयंती के दिन पूज्य गुरुदेव मथुरा से चले गए । उस दिन के बाद से अब तक ऐसी कोई घटना हमें याद नहीं है, जब लगा हो कि परिजनों ने पूज्य गुरुदेव के इस निर्देशकी अवहेलना की है । अपने संबंध में भी ऐसा कोई क्षण याद नहीं पड़ता, जिसमें अपना कर्तव्य

पूरा करने में प्रमाद किया हो ।

विदाई से पूर्व पूज्य गुरुदेव ने यह भी स्पष्ट किया कि हमारे ज्ञान यज्ञ के विचार क्रान्ति अभियान के दो पक्ष हैं । एक पक्ष है सत्संग और दूसरा स्वाध्याय । पक्षी के दो पंखों की भाँति, गाड़ी के दो पहियों की तरह, गायत्री के दो पाँवों की तरह और सिक्के के दो पहलुओं की भाँति दोनों ही महत्वपूर्ण हैं और हमारे दोनों प्रतिष्ठान इनमें से एक-एक पक्ष का निर्वाह करेंगे । इस निर्धारण में सत्संग का पक्ष शांतिकुंज के जिम्मे आया और स्वाध्याय गायत्री तपोभूमि के हिस्से । परिजनों की विदाई के बाद शांतिकुंज में पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में एक के बाद एक असंख्य महत्वपूर्ण शिविर चले और गायत्री तपोभूमि ने सैकड़ों नई पुस्तकों का प्रकाशन किया । सौ पुस्तकों का एक सैट तो पूज्य गुरुदेव की विदाई के साल भर के भीतर ही प्रकाशित हुआ था और इसे हाथों-हाथ लिया गया । तब से अब तक दोनों प्रतिष्ठान अपना दायित्व कुशलतापूर्वक निभाते आ रहे हैं ।

पुत्रों की ओर से हम लोग निश्चिंत हो ही गए थे । राम का व्यवसाय ठीक-ठाक चलने लगा । छोटे बेटे सतीश का घरवार भी यथासमय बस गया । डाक्टरी पास कर उसने चिकित्सा कर्म अपना लिया । दोनों की गृहस्थी भलीभाँति चलने लगी और बीस वर्ष तक सब कुछ निर्बाध चलता रहा है । कहीं कोई गतिरोध नहीं आया । हाल ही में कुछ माह पहले ग्वालियर से एक दिन खबर आती है कि राम की तबियत बहुत खराब है । दौड़े हुए वहाँ गए, देखा वास्तव में राम की हालत चिंताजनक थी । श्वाँस लेने में भारी कठिनाई हो रही थी । पेट में कुछ टिक नहीं रहा था । दवाएँ भी निकल जातीं । ग्वालियर में अच्छे डॉक्टरों को

दिखाया । डाक्टरों ने कहा—हालत बहुत बिगड़ी हुई है, जीवन खतरे में है, तुरंत अच्छी चिकित्सा उपलब्ध कराएँ । ग्वालियर से मथुरा लाए, वहाँ से आगरा और आगरा से दिल्ली के अस्पतालों में इलाज कराया । खतरे की घड़ी तो आरंभ में ही टल गई । डाक्टरों ने जैसे निराशा व्यक्त की थी, उसे देखते हुए राम का बचना मुश्किल ही था, पर जैसे चमत्कार हुआ और खतरा टल गया । फिर भी ठीक होने में चार महीने लगे ।

राम और इंदिरा समेत बच्चों को हमने तब ग्वालियर नहीं जाने दिया, मथुरा में ही रोक लिया । हालांकि राम तब लगभग स्वस्थ ही थे कि एक दिन अचानक तबियत बिगड़ी । पिछली बीमारी को ध्यान में रखते हुए इलाज के लिए उन्हें दिल्ली ले गए । डॉक्टरों ने आश्वस्त किया कि चिंता की कोई बात नहीं है । सब ठीक हो जाएगा । सोचा, जब डाक्टर प्राण संकट बता रहे थे, तब कुछ नहीं बिगड़ा तो अब क्या बिगड़ेगा ? लेकिन अघटित इसी समय हुआ । बीमारी की हालत में राम की तबियत अचानक बहुत बुरी तरह बिगड़ी और संभालने का कोई प्रयत्न करें, डाक्टर आएँ, इसके पहले ही उनके प्राण—पखेरू उड़ गए । अस्पताल में तब हमारे अपने अलावा हमारी बहू इंदिरा ही थी । मृत्युंजय कोई दवा लाने अस्पताल से बाहर गए थे । इंदिरा ने राम के चले जाने का वज्रपात किस प्रकार सहा, कहना कठिन है । उल्टे हमें ढाढस बंधाया, कहा—कि पिताजी अब मैं ही आपके लिए राम हूँ । तभी मृत्युंजय भी आ गए और बहू ने कहा कि अब इन्हें घर ले चलूँ । इंदिरा को इतना निश्चल और दृढ़ हमने पहले कभी नहीं देखा था । पुत्र के असमय स्वर्गवास से कोई भी पिता टूट सकता है और पति की

असमय मौत पत्नी के लिए उससे भी ज्यादा त्रासद होती है, लेकिन बहू इंदिरा ने हमें जिस तरह संभाला, धीरज बंधाया, उसे हम ही जानते हैं ।

वज्रपात के इन क्षणों में कई बार यह विचार भी आया कि अब तक की गई उपासना का, किए गए समर्पण का क्या यही परिणाम मिलना था ? किस मुँह से हम कहें कि अध्यात्म का मार्ग उन्नति और सुख –शान्ति का सुनिश्चित मार्ग है ? कई परिजनों ने गायत्री उपासना पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हुए पत्र लिखे । लेकिन अपना मन यह सब मानने के लिए तैयार नहीं था । गायत्री की कृपा पर किंचित भी संदेह नहीं होता बल्कि अपनी ही त्रुटि के कारण यह अनहोनी हुई लगती थी । फिर भी मन में दरार तो आई ही । एक नहीं अनेक बार कभी अपनी निष्ठा पर तो कभी अपनी साधना–उपासना की, सेवा–समर्पण की महत्ता पर मन में संदेह के बादल उठते रहे । दिन–रात इस मनोदशा से गुजरना होता । नियमित उपासना और गायत्री माता के दर्शन को जाते समय भी यही पीड़ा सालती, पूज्य गुरुदेव की पादुकाओं को प्रणाम करते हुए भी मन इन्हीं बिजलियों की गड़गड़ाहट से काँपता रहता ।

उपासना के क्षणों में एक बार व्यथा इतनी घनीभूत हुई कि लगा सिर फट जाएगा । उस घनघोर पीड़ा के क्षणों में अंतःकरण में पूज्य गुरुदेव की आवाज गूँजी । वे कह रहे थे–न साधना उपासना मिथ्या है और न समर्पण । लोक सेवा का जो मार्ग तुमने अपनाया है, वह भी खरा है । यह क्यों सोचते हो कि राम इस सबके बावजूद तुमसे बिछुड़ गया । सचाई यह है कि राम इस सबके कारण ही तुम लोगों के साथ इतने समय तक रहा वरना उसे तो काफी समय पहले चला जाना चाहिए था ।

–(ॐ मक्तोभमि, मथुरा)

उनकी वाणी सुनते–सुनते ही बोध हुआ कि विदाई सम्मेलन के समय पूज्य गुरुदेव राम की शादी के लिए क्यों मना कर रहे थे ? लगा कि माताजी ने अपने विशेष अधिकार का प्रयोग कर राम की शादी करवा दी और पूज्य गुरुदेव ने अपने बेटे की या पौत्र की आयु बढ़वा दी । अंतःकरण में वही आवाज फिर गूँजी, प्रकृति के नियमों को कौन बदल सकता है ? भगवान कृष्ण अपनी मौत को नहीं टाल सके, हम स्वयं अपने पर आया संकट स्थगित नहीं कर सके । इस होनहार को टालना क्या उचित होता और कहाँ तक टालते रहते ?

उन्हीं की वाणी अन्तर्मन में गूँज रही थी । कहा–प्रकृति के नियमों में हस्तक्षेप कर, विधान को उलटकर, कर्म संस्कारों को रोककर राम की आयु जितनी बढ़ाई जा सकती थी, उतनी बढ़ा दी गई । यह अवधि बीस वर्ष से ज्यादा तक जाती है । बढ़ाई गई आयु तो अप्रैल १९९१ में ही पूरी हो गई । ग्वालियर में उसी समय राम का जीवन पूर्ण हो रहा था, लेकिन इसे वंदनीया माताजी का ही अनुग्रह मानना चाहिए कि उन्होंने अपने तप का एक अंश दे कर चार माह का समय और बढ़ाया । इसके पीछे उनकी दृष्टि यही थी कि बच्चे अपने पूर्व स्थान से हटकर सुरक्षित जगह में जम जाएँ । वह स्थान मथुरा के सिवाय और कहाँ हो सकता था । चार माह की अवधि में वह कार्य सम्पन्न हो गया । आयु के इस विस्तार के लिए माताजी को क्या विशेष अनुष्ठान और तप करने पड़े, इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है । बस यही जानना और संतोष करना चाहिए कि ग्वालियर से मथुरा तक का आयुदान माताजी का ही विशिष्ट अनुग्रह है ।

पूज्यवर की आवाज सुनाई दे रही थी, तुम्हारा हृदय

भग्न हुआ है, यह स्वाभाविक है, पर अपने दुःख को इंदिरा कें दुख की तुलना में रखकर देखो । उसका दुःख कितना भारी है । तुम्हारा दुःख तो भावनात्मक ही ज्यादा है । बेटी इंदिरा के सामने तो अपना और अपने तीन बच्चों के भविष्य का भी सवाल है । उस सवाल और अनिश्चितता से जूझते हुए भी वह चुप और गंभीर है । उसकी तुलना में तुम्हारा क्षोभ हल्का ही है । अतः इस दुःख को सहना सीखो । याद है हमने तुम्हें हमेशा अपने साथ दौरों में रखा । विदाई सम्मेलन से पूर्व के दौरों में भी तुम साथ रहते थे और बाद में शक्तिपीठों के उद्‌घाटन कार्यक्रमों में भी तुम साथ रहे । तुम्हारा साथ चलना संभव न रहा, तो हमने उद्‌घाटन कार्यक्रमों में जाना स्थगित कर दिया । तुम मुझसे अभिन्न रूप से जुड़े हुए हो ।

हमने पूछा कि अब क्या आदेश है । उत्तर अन्तःकरण में ही मिला—लिखो । हमने कहा—"गुरुदेव हमें स्कूल जाने का कहाँ मौका मिला । किताब पढ़ लेते हैं और चिट्‌ठियों का जबाव दे लेते हैं, इतनी योग्यता है.........।" अपनी बात पूरी करते इससे पहले ही उन्होंने कहा—"इसकी चिन्ता क्यों करते हो ? कबीर कहाँ पढ़े—लिखे थे ? उन्हें अक्षरज्ञान तक नहीं था । फिर भी उनकी अन्तःचेतना में दिव्य आलोक का अवतरण हुआ और प्रेरणा जगी कि वे अपनी अनुभूतियों को गाएँ । उन्होंने गाना शुरू किया, तो ऐसा साहित्य सामने आया कि आज विश्व विद्यालयों के प्रकाण्ड विद्वान भी उसे समझने में अपना पूरा समय और पूरी प्रतिभा झोंक देते हैं, फिर भी उन्हें संतोष नहीं होता कि कबीर के उद्‌बोधन की वे हृदयंगम कर पाए हैं ।"

पूज्य गुरुदेव की वाणी सुनाई दी—"अंतस् में प्रेरणा उमगने लगे, मार्गदर्शक सत्ता अगर माध्यम चुन ले और

युग की पुकार किसी कण्ठ का वरण कर ले तो दूसरी किन्हीं योग्यताओं की जरूरत नहीं है । कबीर की तरह, सूर की तरह और मीरा की तरह तुम भी अपने आपको बाँस की पोंगरी समझो, जो किसी के अधरों पर सिर्फ रखी जानी है और जिसे उस मुख से निकली वायु को अपने भीतर मार्ग भर देना है । स्वर लहरी तो फिर अपने आप गूँजेगी ।"

बहू इंदिरा के संबंध में भी भीतर से आश्वासन मिला—"जब चौबीस वर्ष पहले तुमने अपना समर्पण कर दिया, अपना योगक्षेम हमें सौंप दिया तो फिर अब चिंता क्यों करते हो ? इंदिरा के प्रति तुम्हें नहीं, हमें अपना दायित्व निभाना है । वह मिशन के काम में लगेगी । बहू होने के नाते परोक्ष रूप से तो वह पहले भी मिशन का ही काम कर रही थी लेकिन अब प्रकट रूप से भी वह युग निर्माण की गतिविधियों में सहयोगी सिद्ध होगी ।

लिखने के संबंध में निर्देश था कि सुबह के समय कुछ देर बैठा करो । हम स्वयं बताएँगे कि तुम्हें क्या लिखना है ? एक दिन इसी प्रयास क्रम में प्रेरणा हुई कि विदाई सम्मेलन से पहले शिविरों में पूज्य गुरुदेव जो प्रवचन देते थे, उन्हें ही इसके लिए लिपिबद्ध कर लिया जाए । उन शिविरों में दिए गए प्रवचनों के नोट्स कहाँ रखे हैं ? यह सब भी याद नहीं था । लग रहा था कि मथुरा में आई १९७८ की प्रचण्ड बाढ़ के समय कहीं वे भी बह गए हैं । परिजनों को ध्यान होगा कि तब मथुरा में कई महत्त्वपूर्ण रिकार्ड यमुना की बाढ़ में बह गए थे या नष्ट हो गए थे । लेकिन अन्तःकरण में गूँज रही उनकी वाणी उनका उल्लेख कर रही थी, तो निश्चित था कि वे नष्ट नहीं हुए होंगे । ढूँढ़ा, तो उन्हें एक जगह सुरक्षित पाया । लेकिन वह लिखावट

और संदर्भ समझना मुश्किल था । गुरुदेव ने यहाँ भी आश्वस्त किया और एक बार जमकर बैठना भर पर्याप्त बताया ।

उस प्रेरणा के बाद से नियमित बैठना जारी है । निश्चित समय पर वे नोट्स लेकर बैठ जाते हैं । गायत्री माता, पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी का स्मरण करते हैं, तो अनुभव होता है कि जिन तारीखों में ये नोट्स लिए गए हैं, उन तारीखों के प्रवचन पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से ही सुन रहे हैं । यही नहीं वही लिखा भी रहे हैं और कभी कोई अंश छूट जाता है तो उसे पूरा भी कराते हैं ।

पूज्य गुरुदेव के इन प्रवचनों में धर्म और अध्यात्म का व्यावहारिक पक्ष मुखरित हुआ है । उनके प्रवचनों की भाषा इतनी सुबोध और मर्मस्पर्शी है कि सीधे अंतःस्थल तक पहुँचती है । यह भी उल्लेखनीय है कि प्रवचन उस समय के हैं, जब पूज्य गुरुदेव जीवन के विभिन्न पक्षों को अध्यात्म की दृष्टि से देख और अपने चिंतन को उद्घाटित कर रहे थे । इसलिए भी इनका महत्त्व विशेष है ।

—लीलापत शर्मा

व्रत की उपेक्षा का पाप संताप

(गायत्री तपोभूमि, मथुरा में १ अगस्त १९६८ को प्रातः दिया गया प्रवचन)

देवियो और भाइयो,

एक बार नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषि इकट्ठे हुए । अलग-अलग रहकर कोई काम नहीं होता, इसलिए ऋषि-मुनि एकत्रित होकर समस्याओं का समाधान खोजा करते थे । यहाँ नैमिषारण्य में भी ऋषि-मुनि युग समस्याओं पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे । इस बार ऋषियों ने सूत जी से पूछा-हे महामुने ! वह कौन-सा व्रत और तप है, जिसके पालन करने से दुःखों का निवारण होता है । तप का अर्थ है-तपना । संयम से रहना तप है । व्रत उसे कहते हैं, जो संकल्प करें, उसे जीवन भर पालन करें । सूत जी उसे कहते हैं, जो कथा समझाकर सुना दें और उस कथा के माध्यम से जीवनोपयोगी प्रेरणायें उभार दें । सूत जी बोले-हे मुनियो ! नारद जी ने एक बार यही प्रश्न कमलापति विष्णु भगवान से किया था । भगवान ने जो व्रत (प्रसंग) नारद जी से कहा, उसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । नारद नाम के योगी एक बार मृत्यु लोक में आये, उन्होंने यहाँ के प्राणियों को अपने ही कर्मों से कष्ट पाते देखा ।

योगी उसे कहते हैं, जो अपनी उन्नति के साथ

दूसरों की उन्नति भी सोचता है । इसलिए नारद भी योगी थे । क्योंकि वे पराये दुःख को दूर करने में लगे रहते थे । संत बादलों की तरह घूमा करते हैं । जहाँ सूखी जमीन दिखाई देती है, वहीं वर्षा कर देते हैं । दूसरों के दुःखों को दूर करने के लिए नारद जी मृत्यु लोक में आये । यहाँ उन्होंने मनुष्यों को नाना प्रकार के कष्टों में डूबे हुए देखा । नाना योनियों में भटकने के बाद मनुष्य जन्म लेता है । इसलिए उनके स्वभाव में उन योनियों के संस्कार आ ही जाते हैं । कुत्ते की तरह चापलूस, जहाँ मिलें वहीं पूँछ हिला दें । साँप की तरह गुस्से वाला, कौए के समान भक्ष्य-अभक्ष्य का ज्ञान नहीं रखने वाला । यह कुछ उदाहरण हैं । इस तरह विभिन्न प्रकार की योनियों के संस्कार वाले लोग मिल जाते हैं । यह उनका स्वभाव होता है और ऐसे लोगों से हर व्यक्ति खिन्न है, परेशान है ।

काहु न कोउ दुःख कर दाता ।
निज कृत कर्म भोग कर भ्राता ।।

हमको भगवान दुःखी नहीं करते । हम अपने कर्म से ही अपने को दुःखी बनाते हैं, बीमार बनाते हैं । नारदजी ने देखा कि मनुष्य अपने कर्मों से ही दुःख पा रहे हैं । यह दुःख किस उपाय से दूर होंगे ? ऐसा विचार करके नारद जी विष्णु लोक को चले गये । किस काम के लिए गये ? मुकदमा लड़ने के लिए नहीं । संत को सदैव एक ही चिन्ता रहती है कि संसार कैसे सुखी हो ? घर-घर में प्रेम कैसे आये ? वहाँ विष्णु भगवान को देखा-चार भुजा वाले, हाथ में शंख,

चक्र, गदा, पद्म लिए हुए । शंख जैसे ही हमारे क्रिया–कलाप होने चाहिए, जो सबको जगा दें । चक्र की तरह हम निरन्तर गतिशील रहें । क्रियाशील होकर कर्म करें । गदा दण्ड के लिए है । धर्म दण्ड विद्यार्थी को, वानप्रस्थी को दिया जाता है । इस समाज को ज्ञान, उपदेश से ठीक किया जाता है, परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो समझाने से नहीं समझते, उन्हें हथियार से डराया जाता है, इसलिए गदा होती है । भगवान राम–कृष्ण ने दुष्टों को किस प्रकार मारा था । दण्ड देने की क्षमता हमारे पास होनी चाहिए ।

नारद जी ने भगवान विष्णु की स्तुति की । भगवान ने कहा–आप किस उद्देश्य से यहाँ आये हो, अपने मन की बात कहो । हे सम्माननीय नारद जी ! जो बातें हों मुझे बतलाओ । देवर्षि नारद जी कहने लगे–मैं मृत्युलोक में गया, वहाँ मनुष्यों को नाना प्रकार के क्लेश में डूबे हुए देखा । दिव्य मनुष्य के समान जीवन जीते नहीं देखा । मच्छरों जैसा, बिच्छू जैसा जीवन जीते देखा । शेर की खाल ओढ़े लोगों को देखा । उनके नाक, आँख, कान अवश्य मनुष्यों जैसे देखे, परन्तु उनके कर्म थे–कुत्ता, बिल्ली, मच्छर जानवरों जैसे । पाप कर्म की वजह से, कुमार्ग पर चलने की वजह से सब दुःखी हैं ।

नारद जी ने कहा–भगवन् ! इनके दुखों के शमन का कोई उपाय हो, तो बताओ, जिससे प्राणिमात्र का कष्ट दूर हो । ऐसा सरल उपाय बताओ जिससे कर्म–फल की व्यवस्था भी बनी रहे और सबका कल्याण भी हो । भगवान की कृपा जिन पर होती है, उनके दुःख

दूर होते हैं । जिन पर भगवान की कृपा नहीं होती, वे वासना–तृष्णा का जीवन जीते हैं ।

भगवान की जिन पर कृपा होती है, उन्हें दुःख, कष्ट आदि नहीं सताते । भगवान की कृपा यह नहीं है कि सपने में भगवान दर्शन देकर चले गये । भगवान मनुष्य की आत्मा में रहता है और रास्ता बताता है । भगवान विष्णु ने कहा–आपका प्रश्न बहुत ही उत्तम है, क्योंकि आप लोकमंगल का काम करना चाहते हैं । लोकमंगल की कामना जिसकी होती है, उसका मोह छूट जाता है । दोनों काम एक साथ नहीं होते । या तो हँस लो या गाल–फुलाकर बैठ जाओ । लोक मंगल का काम कर लो, या मोह कर लो ।

शंकराचार्य जी ने माँ का मोह तोड़ दिया था । समर्थ गुरु रामदास ने विवाह का मोह तोड़ डाला था । मोह हमें एक कदम भी नहीं चलने देता । मोह सेवा–परोपकार, तप कुछ भी नहीं करने देता । भगवान ने नारद से कहा–मैं आपको ऐसा व्रत बताता हूँ, जो मोह छुड़ा दे । "श्री सत्यनारायण व्रत" ऐसा व्रत है, जिसे विधानपूर्वक करने से आदमी सुखी होता है और मोक्ष को प्राप्त करता है । काम, क्रोध, लोभ में हम सब बँधे हुए हैं । इन बन्धनों को काटने से जिन्दा मनुष्य को भी मोक्ष मिल जाता है । सत्यनारायण भगवान का व्रत ऐसा है, जो धीरे–धीरे मुक्ति तक पहुँचा देता है । कथा सुनने मात्र से कोई वैकुण्ठ नहीं जायेंगे । सत्य को भगवान का स्वरूप मानकर जीवन में धारण कर लिया जाए, तो यहीं वैकुंठ उपलब्ध है । गाँधी जी ने सत्य को

भगवान माना था, आज गाँधी जी राष्ट्रपिता कहे जाते हैं। जहाँ गाँधी जी जाते थे, उनके वचन सुनने के लिए लाखों की भीड़ तैयार रहती थी।

नारद जी ने भगवान का वाक्य सुनकर पूछा—हे भगवान ! सत्यनारायण व्रत का क्या फल है ? क्या विधान है ? यह किसने किया था ? यह सब विस्तार से बतलाइये।

भगवान ने कहा—हे नारद ! मृत्यु लोक में लोग सत्य की उपेक्षा करने से ही कष्ट पा रहे हैं।

नारद जी बोले—भगवन ! सत्य धर्म का व्यावहारिक स्वरूप क्या है ? हे प्रभु ! सत्य धर्म धारण करने वाले को कैसा आचरण करना चाहिए ? भगवान बोले—हे नारद ! केवल वचन से सत्य का पालन नहीं होता। सत्य तो उसे कहते हैं, जिससे धर्म की रक्षा भी होती हो और प्राणि मात्र का हित भी सधता हो।

एक कसाई के हाथ से गाय छूट कर भाग गई। रास्ते में एक ऋषि जा रहे थे। उन्होंने गाय को भागते देखा। कसाई ने उनसे पूछा कि क्या आपने एक गाय को जाते देखा है ? ऋषि बोले—जिसने देखा वह बोलता नहीं, जो बोलता है उसने देखा नहीं।

सत्य बोलने को ही नहीं कहते, सत्य की इच्छा करें। ऐसी इच्छा न करें, जो असत्य पैदा करे। सत्य को जीवन में उतारना चाहिए। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि सौ रुपये की नौकरी करेंगे और सौ रुपये की रिश्वत लेंगे। अपने कर्तव्यों का पालन करना ही सत्य है। श्रमशील बनकर कमाना और उचित खर्च

करना ही सत्य है । जनहित में अपनी संपदा को लगाना ही सत्य है । यही सत्यव्रती के लक्षण हैं । जिसकी सत्य के प्रति निष्ठा होगी, वह इस लोक में सुख–शान्ति और परलोक में सद्‌गति प्राप्त करता है । सत्यव्रती दोषों को, दुर्गुणों को दूर रखकर अपने व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाता है । सत्यव्रती की वाणी में मधुरता, मिठास रहती है । सत्यव्रती की वाणी दूसरों को प्रिय लगने वाली होती है ।

सत्यव्रती को विवेक, संयम, सेवा और साहस इन सद्‌गुणों को सतत् व्यवहार में लाते रहना चाहिए । सत्यव्रती सबसे मधुर व्यवहार और शुभ कर्म करना ही भगवान की सच्ची पूजा मानता है । सत्यव्रती इस सारे संसार को भगवान का विराट् रूप मानकर सब प्राणियों की सेवा और हित–चिंतन में लगा रहता है । वह शरीर और मन के आरोग्य को स्थिर रखने का पूरा ध्यान रखता है । वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, आचरण से वह कभी असत्य कार्य नहीं करता । जिसके जीवन में सत्य है, वह असत्य कैसे बोल सकता है ? आँख, कान, मुँह से या अन्य इन्द्रियों से गलत व्यवहार करना ही असत्य आचरण कहलाता है । चोरी करें और माल को रखकर बैठ जायें, यह सत्य नहीं है । आचरण में सत्य को लाना चाहिए । जीवन का हर कार्य सत्यमय होना चाहिए । जो असत्य को धारण कर लेता है, वह दुःखी रहता है । जीवन से असत्य को जैसे–जैसे निकालते जाओगे, वैसे ही सुख प्राप्त होगा ।

जो नीति–व्यवहार में, मर्यादाओं में, धर्म–कर्तव्य में

सत्य को धारण करेंगे, उनके सब दुःख दूर हो जायेंगे। फिर कोई दुःख नहीं रहेगा। भगवान कहते हैं—हे नारद! मनुष्यों से कहो कि अगर वे सुखी रहना चाहते हैं, तो छल—कपट छोड़ें। स्वाति बूँद के लिए पपीहा प्यासा रह सकता है। आप भगवान के पास पहुँचना चाहते हैं, तो सत्य को जीवन में धारण करना चाहिए। जो जीवन में सत्य को धारण करेंगे, उन्हीं को मैं मिल जाऊँगा। मुझे अगर खोजना है तो सत्य में ही खोजें, सत्य ही मेरा स्वरूप है।

सत्यव्रत धारी के पास से सभी परेशानियाँ डरकर भाग जाती हैं। भव—बन्धन से मुक्ति मिल जाती है और वह देवताओं की तरह सुख—संतोष का जीवन बिताता है। हे नारद! तुम मृत्युलोक में जाकर इस उत्तम व्रत का संदेश पहुँचाओ। इस व्रत को सुनकर लोग इसे आचरण में लायेंगे, तो उनके समस्त कष्ट—कठिनाइयाँ दूर होंगी और सब सुखी जीवन बितायेंगे। सबका काम सत्य स्वरूप होगा। लोग एक—दूसरे के हित साधक बनेंगे, तब प्रेम—सहकार, सदाचार पनपेगा। व्यक्तिगत स्वार्थ की बात नहीं सोचेंगे, सबके लिए सोचेंगे। तब कोई दुःखी क्यों होगा।

⊙

प्रसाद की पात्रता और फलश्रुति

(गायत्री तपोभूमि, मथुरा में १० अगस्त १९६८ को प्रातः दिया गया प्रवचन)

देवियो और भाइयो,

सत्य और धर्म का आचरण करने वाले सुखी होते हैं। नारद जी ने भगवान विष्णु से पूछा—भगवान ! आप तो सत्य ही सत्य की बात बतला रहे हैं और कोई बात नहीं बतलाते। भगवान ! सत्यव्रती मनुष्य में कौन–कौन–सी विशेषतायें होती हैं। जिस प्रकार शरीर के अंग आँख, नाक, कान, हाथ, पैर हैं, उसी प्रकार सत्य के भी अंग हैं। सत्य जब वाणी में आता है, तब वह उतना ही बोलता है, जितनी कि आवश्यकता होती है। सत्यवादी कड़वा नहीं बोलता। कड़वेपन में आदमी का घमण्ड छुपा होता है। चाय में चीनी डालो तो चाय मीठी लगेगी, अगर लाल मिर्च डाल दो, तो कैसी लगेगी ? आप पियेंगे ऐसी चाय ? वैसे ही सत्य का मीठापन वाणी में होना चाहिए। सत्यवादी वाणी पर संयम रखता है। ऐसा बोलता है, जिससे दूसरों का भला हो। जो मीठा बोलता है, सब उसकी वाणी सुनने को उत्सुक रहते हैं। महिलाओं को नमक, मिर्च डालने का अभ्यास होता है, वे उतना ही डालती हैं, जितना कि आवश्यक है। सत्य बोलने वाला भी कब, कहाँ और कितना बोलना है, इस बात का ध्यान रखता है। सत्य बोलने वाले में दो बातें मुख्य रूप से पायी जाती हैं। वे

उदार होते हैं और दूसरों को क्षमा कर देते हैं ।

भीम ने अश्वत्थामा को द्रौपदी के सामने लाकर कहा—इसने तेरे पुत्रों को मारा है, तू ही इसे उचित दण्ड दे । द्रौपदी ने कहा—इसे छोड़ दो । अभी तो मैं ही रो रही हूँ, अश्वत्थामा को मारेंगे, तो इसकी माँ भी मेरे ही समान रोयेगी । उदार खुद कष्ट सहते रहते हैं, परन्तु दूसरों के प्रति उदार बने रहते हैं । सत्य बोलने वाला उदार हो जाता है । उदार व्यक्ति निरन्तर प्रगति करता है । वह खुद उठता है और अन्य गिरे हुओं को भी उठाता है ।

गिरे को उठाना, पिछड़ों को आगे बढ़ाना हमारा काम होना चाहिए । सत्य धारण करने वाले व्यक्ति को पर पीड़ा अपनी पीड़ा लगती है । रामकृष्ण परमहंस जी रो रहे थे । उनके भानजे ने कहा—क्यों रो रहे हो ? उनने कहा—मुझे मारा है । किनने मारा है ? जवाब मिला तुमने मारा है । भानजे ने कहा—कब मारा ? स्वामी जी ने कहा—जब तुमने बिल्ली को मारा था, वे डण्डे मुझे लगे । स्वामी जी दूसरों की पीड़ा अपनी समझते थे । जो दूसरों की पीड़ा अपनी समझते हैं, वे सत्यवादी होते हैं ।

जापान के गाँधी संत कागावा नौकरी के लिए नहीं गये । उन्होंने कोठी, पैसा इकटठा नहीं किया । पिछड़े लोगों के बीच गये । उनकी बस्ती में झोंपड़ी बनाकर रहने लगे और उनकी सेवा करने लगे । संत कागावा के पास एक लड़की आयी, उसने कहा—मैं आपसे शादी करना चाहती हूँ । संत ने कहा—मैं तो गन्दी बस्तियों में झोंपड़ी बनाकर रहता हूँ । मुझे तो करुणा चाहिए । संत कागावा ने उस लड़की से शादी कर ली । एक झोंपड़ी

में एक बुढ़िया और एक पागल पड़े थे । वह लड़की उनकी सेवा करने लगी और कहा—यह मेरे सास—स्वसुर की तरह हैं, मैं इनकी सेवा करूँगी । जो पिछड़े लोगों को उठाते हैं, वे सत्यवादी होते हैं । सत्यवादी की एक महानता और होती है, वे परिश्रमी होते हैं । उनकी पहली विशेषता यह कि वे उदार होते हैं और दूसरी यह कि वे श्रमशील होते हैं । सत्यवादी हरामखोर नहीं होते । हरामखोर चोर से भी अधिक पापी है । सत्यवादी को परिश्रमी होना चाहिए ।

सत्य में हजार हाथियों का बल होता है । गाँधीजी के पास एक ही हथियार था—सत्य का, जिसके सामने अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा । सत्यवादी जल्दबाज नहीं होता । सत्यवादी धैर्यवान होता है । बीज बोते ही फल नहीं लगते, समय लगता है । एक दिन कसरत करने से कोई पहलवान नहीं बन जाता । उसके लिए धैर्य चाहिए । पार्वती जी की परीक्षा लेने सप्तऋषि आये थे । ऋषियों ने कहा—शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया है । अब वे विवाह नहीं करेंगे, तब पार्वती जी ने कहा—तप में करोड़ों जन्म लग जायें, तो भी मैं शिव को ही वरण करूँगी । अध्यात्मवादी उतावला नहीं होता ।

संसार में बहुत से काम हैं, उन्हें न्याय की, विवेक की कसौटी पर कसकर करना चाहिए । जो न्याय सम्मत है, उसे स्वीकार करना चाहिए । बुद्ध भगवान ने देखा कि लोग यज्ञ में जानवरों की बलि देते हैं । लोगों से पूछा—ऐसा क्यों करते हो ? लोगों ने कहा कि यह वेद में लिखा है । भगवान बुद्ध ने कहा—यदि यह वेद में लिखा है, तो ऐसे वेद को मैं नहीं मानता । मैं तो

सच्चाई को मानता हूँ । गलत बात को नहीं मानूँगा । बुद्धिवादी हर बात की छानबीन करके जो उचित है, उसे ही मानते हैं ।

एक सिपाही ने अपने लड़के को व्यभिचार के मामले में जेल भिजवा दिया । उसने कहा—न्याय करना मेरा काम है । न्यायशील व्यक्ति अपना—पराया नहीं देखता । अहिल्याबाई ने अपने ही लड़के को हाथी के पाँव के नीचे कुचलवा दिया था । उसने कहा था कि न्याय का ही समर्थन करूँगी । जहाँ ऐसे सत्यनारायण के भक्त हैं, वे ही भगवान के सच्चे भक्त हैं । सत्यनारायण भगवान से लाभ लेना हो, तो गुणों को जीवन में धारण करो । भगवान आपके घर आकर रहेंगे ।

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ ।
मैं बावरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ।।

मैंने तो समझा जप करने, माला घुमाने, घण्टी बजाने से भगवान का प्यार मिलेगा, परन्तु इससे भगवान का प्यार कभी नहीं मिलेगा । गुण, कर्म, स्वभाव के परिष्कार से भगवान का प्यार मिलेगा । जो सत्य को धारण नहीं करते, वे निराशा, चिन्ता और अहंकार में डूबे रहते हैं । भगवान प्रत्येक की समस्याओं को हल करते हैं । निराशा चिन्ता मनुष्य को पीछे हटाती हैं । इस साल फेल हो गये, तो क्या होगा ? नुकसान हो गया तो क्या होगा ? इन बातों की चिन्ता करके निराश नहीं होना चाहिए । सत्यवादी को लोभ—मोह विचलित नहीं कर पाते । जो अनेकों प्रकार के कष्ट सहन करने पर भी कुमार्ग पर नहीं चलता है, वही सत्यवादी है ।

सत्यवादी सभी इन्द्रियों को संयम में रखता है । कृपण और लोभी कभी सत्यनारायण का भक्त नहीं हो

सकता । जो अपनी कमाई ईमानदारी से करता और मिल-बाँटकर खाता है, कुटुम्ब का, समाज का सबका हिस्सा जो देकर खाता है, वह सत्यवादी है । जिसको कभी आलस्य नहीं आता, वह सत्यवादी है । निन्दा, द्वेष, ईर्ष्या यह सब दोष इस सत्यनारायण के व्रत के करने वाले के पास नहीं आते ।

जिसके पास पात्रता होती है, उसे भगवान देते हैं । जिसके पास पात्रता नहीं है वह भगवान से क्या पायेगा ? जिसके पास पात्रता नहीं उसको भगवान नहीं देते । भगवान की कृपा उन पर ही होती है जो पात्रता प्राप्त कर लेते हैं । दण्डवत करने और माला जपने से भगवान की कृपा नहीं मिलती ।

भगवान विष्णु ने नारद जी से कहा-हे नारद ! जो पात्रता प्राप्त कर लेंगे, उनको भगवान का प्रसाद हमेशा मिलेगा । हे नारद ! जो बातें बतलाई हैं वे सब बातें कहना, जो इन बातों को मानेंगे, वे सुखी होंगे, उनके सारे कष्ट दूर होंगे । जिसने सत्यनारायण का व्रत कर लिया है, जिसने सत्य को धारण कर लिया है, उनको कोई कष्ट नहीं होगा, सारी व्यथायें दूर होंगी । वे वैकुण्ठ में देवता की तरह रहेंगे । हे नारद ! पृथ्वी लोक जाओ और कहो कि सब अपने आचरण ठीक करो । अपने जीवन को सत्यमय बनाओ, सब दुःख दूर होंगे । अपनी आदतों को, व्यवहार को और आचरण को सत्यमय बनाओ, तभी सत्यनारायण भगवान का प्रेम मिलेगा और सब सुखी होंगे ।

⊙

व्रत ही नहीं व्यवहार भी

(गायत्री तपोभूमि, मथुरा में ११ अगस्त १९६८ को प्रातः दिया गया प्रवचन)

देवियो और भाइयो,

नैमिषारण्य क्षेत्र में ऋषि बैठे हैं । प्रश्न कर रहे हैं कि मनुष्य के जीवन में जो दुःख और आंतरिक क्लेश है, उनको मिटाने के उपाय क्या हैं ? बतलाइये । सूतजी कथा–कहानियों के माध्यम से धर्म का तत्त्व समझा रहे हैं । कथाओं के माध्यम से सर्व साधारण को समझाया जा सकता है । अठारह पुराणों की रचना भी कथा–कहानियों के द्वारा सबको धर्म और अध्यात्म का रहस्य समझाने के लिए की गयी । सूत जी बैठे हैं, ऋषि प्रश्न पूछ रहे हैं । सूतजी समझा रहे हैं । जो ब्राह्मण अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, उनका अपमान नहीं होता, वह दुःखी नहीं होगा । कर्तव्यों को भुला कर धन नहीं कमाया जा सकता । एक बार अगर कोई कमा भी ले तो उसे समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिलती । डाकू कितना पैसा लाते हैं ? जेबकट कितना पैसा लाते हैं ? परन्तु क्या किसी के यहाँ मकान, जायदाद, जेबर आदि मिलता है ? नहीं । किसी को इज्जत मिलती है ? नहीं । उनकी ताकत और धन–दौलत से लोग आतंकित होकर सामने नमस्कार भले ही करें, पर हृदय से इज्जत नहीं करते । जबकि उचित उपायों से, धर्म–कर्तव्य का पालन करते हुए जो संपदा कमाई जाती है, उसका वास्तव में सम्मान होता है । धर्म–कर्तव्य का सहारा

लेकर आत्म शान्ति तो मिलती ही है, यश, धन भी मिल जाता है। ब्राह्मण वह काम करने लगा, जो नहीं करने चाहिए, इसीलिए वह कष्ट पाने लगा। कर्तव्य के पथ पर चल रहे गाँधी जी की आवाज पर सारा देश चलता था। उन्होंने आह्‌वान किया और एक सप्ताह में तीन लाख का ट्रस्ट बनवा दिया। सूत कातने के चरखों के लिए लाखों रुपये मिल गये, क्योंकि जिसके साथ श्रद्धा है, उसके लिए धन की कमी नहीं रहती। उसे लोग खुशी-खुशी देते हैं। अधर्म का मार्ग अपनाने वालों को कहीं कोई सम्मान नहीं मिलता, उन्हें कोई प्रतिष्ठा नहीं देता। कोई पैसा नहीं देता। ऐसा ही लकड़ी बेचने वाले का हाल है। लकड़ी बेचने वाला ब्राह्मण पहले गीली लकड़ी को सूखी बताकर बेचता था, इस प्रकार उसकी प्रतिष्ठा कम होती गयी और धीरे-धीरे उसकी गरीबी बढ़ने लगी। किन्तु जब वह ईमानदारी से सूखी लकड़ी बेचने लगा, तो लोग उसका सम्मान करने लगे और पैसे भी अधिक मिलने लगे।

एक विद्यार्थी रिक्शा चलाता था। वह मेहनत मजदूरी करके पढ़ता था। सभी से मीठा बोलता और सब का सामान ठीक जगह पर सुरक्षित पहुँचा देता। लोग उसको पच्चीस पैसे की बजाय पचास पैसे देते थे। सही आदमी, तमीज से काम करने वाला आदमी कभी दुःखी रह सकता है ? नहीं।

प्राचीन काल में उल्कामुख नाम का एक बुद्धिमान राजा था। वह धर्म-कर्तव्य का पालन करने वाला जितेन्द्रिय राजा था। वह भगवान पर विश्वास रखने वाला सत्यवादी था। जो कामुक होता है, व्यभिचारी होता है, हीन आदतों वाला होता है, उसका ब्रह्मतेज

चला जाता है । पहले क्षत्रिय वचन के पक्के थे । जो कहते थे, वैसा ही करते भी थे, यह क्षत्रिय के लक्षण थे । वे भगवान पर भरोसा रखते थे और निर्भय रहते थे । जिसको भगवान का भय है, उसको अन्य किसी का भय नहीं रहता ।

जो अकेला खाता है, वह चोर है । जो मिल–बाँटकर खाते हैं, वह कल की बात नहीं सोचते, कल मर गये तो ! जैसे साँप कुण्डली मार कर बैठता है वैसे ही अकेले खाने वाले धन पर कुण्डली मार कर बैठ जाते हैं कि इसे मैं ही खाऊँगा । मेरे बेटे ही खायेंगे । किन्तु राजा उल्कामुख ऐसा नहीं था । वह सत्यव्रती था । राजा श्रेष्ठ कार्यों के लिए दान भी दिया करता था । राजा की पत्नी धर्म परायणा थी । दोनों भद्रशीला नदी के तट पर सत्यनारायण व्रत का अनुष्ठान कर रहे थे । नदी किनारे सत्यनारायण का व्रत करते हुए देखकर साधु नामक एक वैश्य भी किनारे पर आया । उस वैश्य ने उस व्रत से प्रभावित होकर राजा से पूछा–हे राजन् ! आप किसका ध्यान–पूजन कर रहे हैं । मुझे भी बतलाइये, मेरी सुनने की इच्छा है । राजा ने कहा–यह श्री सत्यनारायण भगवान का पूजन है । मैंने सत्य के व्रत को धारण कर लिया है । जो असत्य को धारण करता है, उसे भगवान नहीं मिलता । सभी सत्पुरुषों को चाहिए कि वे सत्याचरण भी करें और सबको अपने अनुभव से प्रेरणा भी देते रहें ।

राजा ने कहा–हे वैश्य ! मैंने सत्य को धारण किया है, इसीलिए मुझ पर, मेरी प्रजा पर भगवान सत्यनारायण की कृपा है और सुख–शान्ति हमें प्राप्त है । जो इस व्रत का पालन करते हैं, वे सांसारिक और आत्मिक

दोनों ही दृष्टियों से सुखी रहते हैं ।

जो अनीति से कमाता है, उसका धन चला जाता है । कोई न कोई ले जाता है । अनीति का धन कभी ठहर नहीं सकता । हमने सत्य व्रत लिया है, इसीलिए फलते-फूलते व सुखी रहते हैं । हमेशा ईमानदार आदमी ही सफल होते हैं ।

स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु के पास नौकरी माँगने गये थे, परन्तु वहाँ जाकर उन्होंने धर्म का मार्ग अपना लिया, तो उन्होंने कितने बड़े-बड़े कार्य कर डाले । बड़े-बड़े सेठ-साहूकार भी घोड़े की तरह उनकी बग्घी खींचते थे । यदि वे नौकरी करते, तो उन्हें कौन जानता । अभी भी उनकी स्मृति में पचास लाख का स्मारक बन रहा है । उन्होंने धर्म का सहारा पकड़ा था । गाँधी जी आधी धोती पहनते थे । जमीन पर सोते थे । इसके लिए उन पर किसी का दबाव नहीं था । यह धर्म द्वारा प्रेरित उनकी आत्मा की आवाज थी ।

राजा ने वैश्य को सत्यव्रत के बारे में बताया । वैश्य ने कहा-मुझे धन की भी कमी नहीं है और कष्ट भी है । हमेशा गुस्सा भी आता है । मुझे इस व्रत का विधि-विधान बता दीजिये ताकि मैं यह व्रत करूँ । राजा ने सब बतला दिया । वैश्य सारा विधान समझकर अपने घर को चला गया । वैश्य की पत्नी का नाम लीलावती था । वैश्य ने लीलावती को सारा वृत्तान्त सुनाया । वह भी सत्य धर्म का पालन करने लगी । पति-पत्नी दोनों अब सत्यनारायण का व्रत करने लगे ।

उनकी कोई सन्तान नहीं थी । लोभी व्यक्ति के यहाँ सन्तान नहीं होती है । जमाखोर मरते दम तक जमा ही करना चाहता है । परमार्थ के निमित्त, समाज के लिए तो

खर्च करता ही नहीं । जहर पेट में चला जाय, तो उल्टी करानी पड़ती है, वैसे ही संग्रह करने वाले जब तक उदार नहीं बनते, उनकी आत्मा का विकास नहीं होता । दान–पुण्य इसलिए कराये जाते हैं कि लोग उदार बनें ।

सत्य व्रत धारण करने से उस साधु वैश्य के घर कन्या का जन्म हुआ । कन्या को पाकर सेठ–सेठानी दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हुए । दोनों ने उस कन्या को पुत्र से बढ़कर समझा । आजकल तो लड़की हो जाये, तो लोगों पर जैसे पहाड़ टूट पड़ता है, ऐसे उदास हो जाते हैं । लड़का हो तो बाजे–बजाते हैं, दावत देते हैं, खुशी मनाते हैं । वैसे लड़की की शादी के बाद उसकी जिम्मेदारी से निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु लड़के की शादी करते हैं, उसके बच्चे होते हैं, नाती–पोते आते हैं । सबका पालन– पोषण करना पड़ता है । साधु वैश्य ने कन्या का नाम कलावती रखा । वैश्य ने अपनी आजीविका का एक अंश भगवान के कार्य में लगाने का व्रत लिया था । दुकान में भगवान को भागीदार बना लिया था । हर एक को भगवान को अपनी आय में भागीदार बनाना चाहिए । वैश्य जो कमाता था, उसमें से एक हिस्सा परमार्थ में लगाता था । उसका उदार ह्रदय देखकर भगवान खुश हो गये । भगवान सेवा भावी एवं उदार व्यक्ति से खुश होते हैं । उदार मनुष्यों को कभी दरिद्रता नहीं आती । गंगा से कितना ही पानी खर्च करो, कम नहीं होता, उसकी पूर्ति हिमालय करता है । धर्म से धन बढ़ता है, घटता नहीं । परोपकारी का धन कभी कम नहीं होता । वैश्य ठीक व्यवहार करने लगा । उसका व्यवहार ठीक होने से उसका व्यापार ठीक चलने लगा ।

थोड़े दिन बाद उन्होंने अपनी आय का एक अंश परमार्थ में लगाने के व्रत की उपेक्षा कर दी और धन जमा करने में लग गये। उन्होंने सोचा अभी कन्या की शादी करनी है। उसके बाद फिर पुण्य करेंगे। कन्या की शादी भी कर दी। गृहस्थ सम्बन्धी जिम्मेदारी पूरी कर हर आदमी को वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करके धर्म प्रचार तथा समाज सेवा के कार्यों में जीवन लगा देना चाहिए। इसी को धर्म कहते हैं, परन्तु वैश्य ने लोभ में फँसकर निश्चय किया कि मुझको पैसा इकट्ठा करना चाहिए। अपने धर्म को त्यागने से भगवान नाराज हो जाते हैं। साधु वैश्य की बुद्धि क्षीण हो गयी, वह अनीतिपूर्वक धन कमाने लगा। भगवान को माला घुमाकर खुश नहीं किया जा सकता। जो कृपण हैं, उनसे भगवान खिन्न हो जाते हैं। भगवान जिन पर नाराज हो जाते हैं, उनके दुःखों का कोई निवारण नहीं कर सकता। साधु वैश्य की नाव में एक दिन राज्य की चोरी का माल मिला, तो उसे जेल भिजवा दिया गया। घर का व्यक्ति कुमार्ग पर चलता है और घर के व्यक्ति उसे नहीं समझाते, तो परिवारीजनों को भी कष्ट भोगना पड़ता है। साधु वैश्य के घर भी यही हाल हुआ। उसके घर जितने जेवर थे, चोर ले गये। अब सारा परिवार दुःखी हो गया। दुःख आने पर लोग अपनी भूल सुधारते हैं। दुःख इसलिए आते हैं कि लोग सावधान हो जायें। साधु वैश्य ने भी पछतावा किया कि मैंने परमार्थ करने की आदत क्यों छोड़ दी। वैश्य के विचार बदल गये। विचार बदलने से जीवन–क्रम बदल जाता है और फिर परिस्थितियाँ भी बदल जाती हैं। लोभ की पकड़ ढीली हुई तो वैश्य का जीवन क्रम भी

बदला । वह सेवाभावी बना । जेल के बाद अन्य लोगों की मदद करता, जरूरत पड़ने पर उनकी सेवा-सुश्रूषा करता । हर समय उनकी कठिनाइयाँ हल करने और कष्टों को दूर करने में प्रवृत्त रहता । राजा को इस बात का पता चला तो उसे विश्वास हो गया कि साधु वैश्य चोर नहीं हैं । तब इनको जेल से छुड़वा दिया और इनको मूल सम्पत्ति देकर रवाना किया । संसार की परिस्थितियाँ भगवान पर टिकी हुई हैं । दुःख भी भगवान की कृपा से सुख में बदल जाते हैं । भगवान की दया जिस पर होती है, उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं । भगवान की नाराजगी सारे सुखों को दुःखों में बदल देती है और भगवान की कृपा सारे दुःखों को सुखों में बदल देती है । वैश्य का चोरी गया जेवर भी मिल गया ।

भगवान कहने से नहीं कर्म करने से प्रसन्न होते हैं । जीभ न मालूम क्या-क्या कहती है, जीभ की नोक से भगवान परीक्षा नहीं लेते, वह तो कर्म से परीक्षा लेते हैं । यह आदमी सच्चा है या झूठा है, इस बात का पता उसके कर्म से ही चलता है । जिसका जीवन शुद्ध है, पवित्र है, उनको भगवान प्यार करते हैं । झूठी प्रशंसा करने वाले से व्यक्ति भले ही खुश हो जाते हों, पर भगवान खुश नहीं होते ।

हे भगवान ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, ऐसा लोग कहते तो हैं, परन्तु मौका मिले तो ठाकुर जी का मुकुट भी बेच आवेंगे । हाथ से घण्टी बजाते हैं, परन्तु आपके भीतर क्या है ? भगवान पाठ करने वाले, भजन करने वाले से खुश नहीं होते, वे तो कर्म करने वालों से खुश होते हैं । जिनका जीवन सत्य से भरा होता है,

उसको प्यार करते हैं । जो दुःखियों की सेवा करते हैं, भगवान उनसे प्रसन्न होते हैं । भगवान हमेशा भक्तों की परीक्षा लेते हैं । परीक्षा बिना एम. ए. का सर्टिफिकेट नहीं मिलता । भगवान ने साधु वैश्य की भी परीक्षा लेने का विचार किया और एक ऋषि के रूप में उस के पास पहुँचे । उससे कहा—लोकमंगल के लिए सहायता करो । वैश्य ने साफ मना कर दिया । इस तरीके से जब अहंकार आ जाता है, तो विपत्ति बढ़ती है । दुःख आने पर आँख खुल जाती है । जो भी मुसीबत आती है, जगाने के लिए आती है । कर्तव्यों को न भूलें, इसलिए कष्ट आते हैं ।

डाक्टर जब फोड़े का ऑपरेशन करता है, तो मरीज डाक्टर को गाली देता है । तब डाक्टर कहता है—तेरे फोड़े में पीव है, हम उसे निकाल रहे हैं, इससे तुम्हें सुख मिलेगा । जब दुःख होता, तब लोग अपनी भूल याद करते हैं । साधु वैश्य पर भी भगवान का कोप हुआ, उसके ऊपर विपत्ति आयी । साधु वैश्य की नाव दुर्घटनाग्रस्त होकर धन सहित डूब गयी । किसी प्रकार साधु वैश्य अपने दामाद सहित बच सका । साधु—वैश्य को अपनी भूलें याद आयीं कि अपनी आवश्यकता पूरी होने पर जो भी धन बचेगा, वह लोकमंगल के काम में लगाऊँगा । साधु वैश्य ऋषि के पास गया, अपनी भूल स्वीकार की और सहायता की माँग की । ऋषि ने कहा—धन एक व्यक्ति की नहीं, पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति होती है, उसे नष्ट नहीं होने देना चाहिए । ऋषि ने आश्रमवासियों की सहायता से डूबा हुआ धन निकाल लिया ।

तब वैश्य ने लोकमंगल हेतु धन दे दिया और ऋषि

को प्रणाम कर घर चला गया । सत्यव्रती बनकर वह समाज में सत्यव्रत का प्रचार करने लगा । जो भगवान का आशीर्वाद चाहते हैं, उन्हें शुभ कर्म प्रारंभ कर देने चाहिए । साधु वैश्य सही रास्ते पर आ गया, तो उसके सारे कष्ट दूर हो गये । फिर लीलावती और कलावती दोनों अपने पतियों के साथ सुख–शांति का जीवन जीने लगीं । भगवान सत्यनारायण की महिमा अपरम्पार है । सत्यनारायण भगवान की शरण में जाने वाले सुख–शान्ति पाते हैं । वैश्य को धन कमाना चाहिए, परन्तु बाँटकर, दूसरों को देकर समाज की सेवा भी करनी चाहिए ।

सत्य की शरण से मुक्ति

(गायत्री तपोभूमि, मथुरा में १२ अगस्त १९६८ को प्रातः दिया गया प्रवचन)

देवियो और भाइयो,

वर्णाश्रम धर्म हिन्दू धर्म का सबसे बड़ा धर्म है । चार वर्ण भगवान की चार भुजाओं की तरह हैं और उन चारों की अलग-अलग जिम्मेदारी है । ब्राह्मण का काम है—अज्ञान को मिटाना । क्षत्रिय का काम है—अत्याचार, अन्याय को समाप्त करना । वैश्य वह है, जो समाज में अभाव को दूर करें । समाज की जरूरतों को पूरा करें जैसे—अनाज, दूध, कपड़े की आवश्यकता का प्रबन्ध करें । श्रमिक वह, जो श्रम करता है, काम करता है । यह चार वर्ण हुए । चार आश्रम भी हैं । पहला— ब्रह्मचर्य आश्रम । ब्रह्मचर्य का पालन करना और विद्याध्ययन करना । दूसरा आश्रम—गृहस्थाश्रम । युवा होने पर विवाह करना एवं परिवार के पालन-पोषण की व्यवस्था करना । पचास वर्ष की उम्र के बाद वानप्रस्थ आश्रम के अन्तर्गत समाज की सेवा के लिए घूमना । परिव्रज्या करना । पचहत्तर वर्ष की अवस्था में संन्यास आश्रम । जब बुढ़ापे में ज्यादा घूमा-फिरा नहीं जा सकता, तब कुटी बनाकर रहना और एक स्थान पर रहकर समाज की सेवा करना ।

सत्यनारायण कथा में चारों वर्ण के कर्तव्य बताये गये हैं । ब्राह्मण का कर्तव्य बताया गया है कि उसे भिखारी नहीं होना चाहिए । समाज को जगाना

चाहिए । जहाँ ब्राह्मण होता है, वहाँ सारा समाज जाग जाता है । जो समाज को दिशा देता है, समाज को कर्तव्य सिखाता है, वह ब्राह्मण है । बिना पढ़ा-लिखा आदमी ईमानदारी से कोई भी काम करे, तो वह उन्नति कर सकता है । वह काम छोटे से छोटा भी हो सकता है । कल हमने राजा उल्कामुख के बारे में बताया था । वह राजा स्वयं अच्छे काम करता था । भजन पूजन भी करता था, वही उसने साधु वैश्य को भी बतलाया । प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं भी अच्छे काम करे और दूसरों को भी अच्छे काम करने की प्रेरणा दे । जो स्वार्थ के साथ परमार्थ का भी ध्यान रखते हैं, वे गृहस्थ सुखी हो जाते हैं ।

राजा ने जब साधु-वैश्य को सत्यनारायण की कथा सुनायी, तो वैश्य भी उस मार्ग पर चलने लगा और समाज, देश, संस्कृति तथा विश्व के हित की बात करने लगा, तो उसे सुख-शान्ति मिली और उसके यहाँ संतान का जन्म भी हुआ । जो परोपकार को भूल जाता है और जैसी उमंग आती है, वैसा ही करने लग जाता है, वह दुःखी होता है । यही हाल साधु वैश्य का था । यही हाल हमारा आपका है ।

जो परमार्थ का ध्यान नहीं रखता, उसकी नाव डूब जाती है । आज हम सबकी नाव भी डूब गयी है और जेल खाने में पड़े हैं । जो भूल साधु वैश्य ने की थी, वही हम सब कर रहे हैं । भूल सुधार की जा सकती है । पहली भूल साधु वैश्य ने सुधार ली थी, तो वह सही रास्ते पर आया और उसे सुख-शान्ति का जीवन मिला । हम भी अपनी भूल सुधार लें, तो सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकते हैं ।

सूतजी कहने लगे—हे मुनियो ! मैं आगे की कथा सुनाता हूँ । एक तुंगध्वज नाम का राजा था । एक बार वह राज्य का निरीक्षण करने के लिए निकला । राजा ने वट वृक्ष ने नीचे गौओं को चराने वाले ग्वालों को एकत्रित देखा, जो श्री सत्यनारायण व्रत की कथा कर रहे थे । प्रत्येक धनवान व्यक्ति का कर्तव्य है कि अच्छे कामों में हर एक को सहयोग करें । जहाँ अच्छे काम हो रहे हैं, वहाँ से जो मुँह मोड़ लेता है, वह पाप करता है । गोप—ग्वालों ने राजा को निमंत्रण दिया कि इस आयोजन में शामिल हों और प्रसाद ग्रहण करें । राजा ने कहा—मैं तो बड़ा आदमी हूँ, मैं तुम्हारे इस आयोजन में क्यों जाऊँ ? राजा ने गोपों का तिरस्कार किया और अहंकार में आकर गोपों का निमंत्रण ठुकरा दिया । अच्छे कामों में लगे व्यक्ति का तिरस्कार करने से भगवान नाराज होते हैं । बुरे कामों में असहयोग करने से भगवान प्रसन्न होते हैं । अच्छे कार्य से विमुख होने से राजा पर विपत्तियाँ आयीं ।

अपने काम से काम रखना नीच लोगों की वृत्ति है । समाज की बुराइयों को दूर करना चाहिए । जो समाज की बुराइयों को मूक बनकर देखते रहते हैं, उनसे भगवान नाराज हो जाते हैं । उनकी दुर्गति होती है । यही हाल राजा का हुआ । सारी व्यवस्था बिगड़ गयी । कुटुम्ब में क्लेश, द्वेष, आलस्य और प्रमाद भर गया ।

सिकन्दर ने राजाओं को मार—मार कर कितना धन इकट्ठा किया था । मरते समय कह रहा था, इस सारे धन को मैं साथ लेकर जाऊँगा । सबने कहा—क्या आप पागल हो गये हैं ? पागल जैसी बात करते हैं ? सामान किसी के साथ जाता है क्या ? धन को साथ ले जाना

है, तो धर्म के लिए, लोकमंगल के लिए, समाज की सेवा के लिए खर्च करो । जिस प्रकार हिन्दुस्तान की मुद्रा विदेश में जब काम आती है तब वह उस देश की मुद्रा में बदल ली जाती है । हमारे काम इस धन को भी धर्म के माध्यम से बदल देते हैं, तब साथ जाता है । आत्मा के साथ धन नहीं जाता । सिकन्दर मरने लगा, वह धन को धर्म में नहीं बदल सका था, तो वह धन उसके साथ नहीं गया । आपका धन यहीं रह जायेगा, चोर ले जायेगा, बेटा–दामाद ले जायेगा । आदमी कमाता तो खूब है, पर काम में एक पैसा भी नहीं आता । जब बुढ़ापा आ जाता है, तब बेटे से पैसा माँगता है । बेटा फुटकर पैसे थमा देता है । धन तो बेटा सब छीन लेता है, किन्तु जब बेटा बाप के खिलाफ हो जाता है, तो सब धन नष्ट हो गया समझो । माँ कहती है–मेरी सन्तान नहीं होती, तो अच्छा होता । अपने काम नहीं आये, ऐसा बेटा हो तो क्या और नहीं हो तो क्या ? राजा तुंगध्वज का हाल भी ऐसा ही हुआ ।

महर्षि कर्वे प्रोफेसर थे । उनने इस्तीफा देकर शेष जीवन विधवाओं के कल्याण के लिए शिक्षा एवं स्वावलंबन की योजना बनाकर समाज सेवा में लगा दिया । उनको इस्तीफा देने के बाद चार हजार रुपया प्रोविडेण्ट फण्ड का मिला था । बड़े लड़के ने मैट्रिक पास कर लिया, तब कर्वे जी ने लड़के से कहा–अपना काम करो । मैं आगे नहीं पढ़ा सकता । पढ़ना है, तो मैं कर्ज दे सकता हूँ, दान नहीं दे सकता । पालन–पोषण करना पिता का कर्तव्य है । महर्षि कर्वे ने बड़े लड़के को कर्ज दे दिया । लड़का पढ़ता रहा, जब पढ़ने के बाद नौकरी लग गयी, तो उसे कर्जे की

याद दिलायी और कर्जा लेना आरंभ कर दिया । बड़े लड़के की पचास रुपये की किस्त आती थी । छोटे लड़के को पचास रुपये दे देते थे । इसी तरह छोटे को भी एम. ए. तक पढ़ाया । तीसरे को भी इसी तरह पढ़ाया । चार हजार रुपये भी नष्ट नहीं हुए और सभी लड़कों को पढ़ाया भी ।

जो आदमी भगवान के रास्ते पर नहीं चलता उसका धन नष्ट हो जाता है । वासना–तृष्णा–अहंता से जकड़े हुए लोग दुःख पाते हैं । तुंगध्वज के जीवन की ही नहीं, हमारे आपके जीवन की भी यही कहानी है । जिनकी बुद्धि निम्न वृत्ति की ओर चल रही है । उनको दुःख ही दुःख मिलने वाला है । अहंकारी व्यक्ति को चाहे साधारण मनुष्य हो या राजा हो दुःख मिलेगा ही । सत्यनारायण भगवान अपने मार्ग पर चलने वाले से प्यार करते हैं । जो कुमार्ग पर चलते हैं, वे कितना ही भजन–कीर्तन और पूजा–पाठ करें, शिवजी पर जल चढ़ायें सब बेकार है । शंकर जी की पूजा करते हैं, तो उनके दर्शन को जीवन में धारण करना चाहिए । शिव की ज्ञान गंगा हमारे जीवन में आ जाये । शंकर जी साँप को छाती से लगाये हुए हैं । विष को पी लेते हैं । गुस्सा–क्रोध, द्वेष–दुर्भाव को पीते हैं । इसीलिए नीलकण्ठ हो गये । शंकरजी भूत–प्रेतों को अपनी सेना में भर्ती करते थे । बहुत से बलवान भी थे, उनको भर्ती नहीं किया । भूत–प्रेत, दुबले–पतले, लूले–लँगड़े, तिलक वाले, बिना तिलक वाले सबको अपना कुटुम्ब बनाकर चले । शंकर जी को वही प्यारे होते हैं, जो पिछड़ों को साथ लेकर चलते हैं । सबको अपने कुटुम्ब की तरह मानते हैं । शंकरजी की पूजा करनी है, तो

कल्याणकारी बनो । अपने लोभ, मोह और अहंकार को समाप्त कर दो । शिवजी का त्रिशूल इन्हीं पाप वृत्तियों से लड़ने की प्रेरणा देता है ।

शंकर जी पर बेल के पत्ते चढ़ाते हैं, परन्तु उनकी आज्ञा नहीं मानते । भगवान उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले पर नाराज हो जाते हैं । नियम बिगाड़ने वाले पर सबको गुस्सा आता है । नियम का पालन करने वाले पर सबको प्रसन्नता होती है । ठोकर लगती है तो अक्ल आती है ।

कुन्ती ने कहा था—भगवान ! मुझे मेरे जीवन में दुःख ही दुःख देते रहना । क्योंकि सुख में आदमी को घमण्ड हो जाता है । सब भूल जाता है । दुःखी आदमी पाप—पुण्य का ध्यान रखता है । कुन्ती ने इसीलिए कहा कि मुझे दुःखी रखना ताकि तेरी याद आती रहे । इसी प्रकार तुंगध्वज राजा को दुःख में याद आया कि मैं गोपगणों के प्रसाद को छोड़कर आया था । राजा ने भूल सुधारने की सोची । भगवान माफ किसी को नहीं करता, प्रायश्चित्त सबको करना पड़ता है । गड्ढा किया है तो भरना पड़ेगा । गन्दगी की है, तो साफ करनी पड़ेगी । तुम्हारी साइकिल से टाँग टूट गयी है, तो इलाज कराना ही पड़ेगा । प्रायश्चित्त के लिए ऐसा काम करो, जिससे की गयी गलती की क्षति पूर्ति हो जाये । मनुष्य अपना मित्र भी है और शत्रु भी । आप अपनी आत्मा को गिराओ मत । अपने आप को सुधार लीजिये, मुसीबत अपने आप दूर हो जायेगी । यही बात गोपगणों ने राजा को बतलायी । यह बात आज तक किसी पण्डित ने नहीं बतायी । पण्डितों ने कहा—गंगा जी के दर्शन से सौ जन्म तक के पाप नष्ट

हो जाते हैं, गंगा जल पीने से दो सौ जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं और स्नान करने से एक हजार जन्म के पाप दूर हो जाते हैं । परन्तु इस तरह पाप दूर होने वाले नहीं । झूठे लोग बहकाते रहे और दुनियाँ बेईमान होती रही । गोपगणों ने राजा तुंगध्वज को ऐसा ज्ञान नहीं बताया । गोपों ने वास्तविकता को जान लिया था । उन्होंने कहा आप अपने विचारों को बदल डालो ।

अगर आप दुःखों से दूर होना चाहते हैं, तो जो दुर्गुण भरे पड़े हैं, उनको दूर करो । वासना, तृष्णा को दूर करो । भगवान तुम्हारी सब मनोकामनायें पूरी कर देंगे, परन्तु पापों को मिटाओ, दुर्गुणों को मिटाओ । गोप राजा से कह रहे हैं—सत्य पर आरूढ़ होने वाले के कष्ट दूर हो जाते हैं । सत्य का ज्ञान सुना और उसका मनन करके राजा ने जीवन में उतारा । राजा का जीवन परोपकारी, सत्यभाषी, प्रियभाषी बन गया । तुंगध्वज भगवान की शरण में गया । सत्य की शरण में गया, तो उसको सारा वैभव मिल गया । गोपों ने जो ज्ञान दिया उसे सुनकर राजा की आँख खुल गई । उसने जीवन परिवर्तन कर लिया, तो सारी सुख—शान्ति उसे मिल गयी । सत्य की उपासना भगवान की सेवा है । अध्यात्म से शुभकामनायें पूरी होती है । सब अपने कुटुम्बी बन जाते हैं ।

स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस की कोई संतान थी ? नहीं ! फिर भी उनका कितना बड़ा कुटुम्ब था । गाँधी जी का कितना बड़ा कुटुम्ब था ? हजारों—लाखों लोग उनके साथ थे । पेट के ही बच्चे हों कोई जरूरी है क्या ? गाँधी जी के स्मारक के लिए दस करोड़ रुपया इकट्ठा हुआ । भगवान के रास्ते पर,

सत्य के रास्ते पर चलने वाला कभी गरीब नहीं होता । सत्य पुण्य को देने वाला है ।

सत्य मुक्ति देने वाला है । सत्य की उपासना से धन–धान्य, पुत्र, सब मिल जाते हैं । खेत में बीज बोओगे, तो फसल काटोगे । आपका पेट भरेगा । भगवान की कृपा पाना चाहते हैं, तो सत्य का मार्ग अपनाइये । सत्यनारायण कथा हमारे जीवन का मार्ग दिखाती है ।

सत्यव्रती इस संसार में इच्छित फल प्राप्त करके अन्त समय में सत्यलोक में स्थान पा लेता है, इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिए । सत्यनारायण का व्रत लेने पर जो बन्धन हैं, उनसे मुक्ति मिल जाती है ।

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा की क्रिया-पद्धति

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा का तात्पर्य है, सत्य को साक्षात् भगवान मानकर जीवन में सत्यनारायण का व्रत लेने की चर्चा। सत्य बोलने भर की छोटी क्रिया नहीं वरन् जीवन के हर क्षेत्र में धर्म-कर्तव्य, नीति, सदाचार, मर्यादा एवं विवेक के आधार पर विचार एवं आचरण करना, सत्यनिष्ठा का समग्र रूप है। सत्य बोलना भी सत्यनिष्ठा का एक छोटा रूप है। उसकी आवश्यकता है, पर जिस सत्य को नारायण कहा गया है, वह सच बोलने तक सीमित नहीं। सारी मनोवृत्तियों, आकांक्षाओं एवं क्रिया-कलापों को जब धर्म मर्यादाओं के अनुरूप बना लिया जाय, तो समझना चाहिए कि सत्य रूपी भगवान का जीवन में अवतरण हुआ। यह अवतरण ईश्वर-प्राप्ति या ईश्वर-दर्शन का एक रूप है।

"श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा" में भिक्षा जीवी ब्राह्मण, लकड़हारा, लीलावती-कलावती, साधु-वैश्य, तुंगध्वज, चन्द्रकेतु आदि का वर्णन है, उनमें एक ही तथ्य का प्रतिपादन है कि सत्यनिष्ठा अपनाने से, श्रीसत्यनारायण का व्रत लेने से लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जीवन सुख-शांतिमय बनते हैं और इस सत्प्रवृत्ति को छोड़ देने से नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इन कथानकों में ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत किए गये है और सुनने वालों को

समझाया गया है कि उन्हें चक्रधारी कृष्ण या धनुर्धारी राम को ही भगवान मानकर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए वरन् यह भी अनुभव करना चाहिए कि नारायण का प्रत्यक्ष संपर्क हम सत्याचरण के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। सदाचारी व्यक्ति अनायास ही ईश्वर का कृपा पात्र बन जाता है। उसकी हर जीवन दिशा आनन्द, मंगल से परिपूर्ण रहती है। जिनने नारायण को सत्य के रूप में नहीं पहचाना वरन् भोग–नैवेद्य से और स्तवन पूजन मात्र से उसे फुसलाने की बाल–क्रीड़ा करते रहे, वे उस विडम्बना से कुछ वास्तविक लाभ न पा सकेंगे।

सदाचरण की सद्भावनाएँ जनमानस में प्रतिष्ठापित कराने के लिए श्रीसत्यनारायण व्रत–कथा का अधिकाधिक प्रचार आवश्यक है, पर खेद है कि उसका वास्तविक तात्पर्य आज न तो समझा जाता है और न समझाया जाता है। कथा सुन लेने और पंचामृत–पंजीरी का प्रसाद खा लेने मात्र से लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। सवा रुपया दक्षिणा देकर लोग समझ लेते हैं कि उन्हें पुण्य मिल गया और जो लाभ कथा में वर्णित पात्रों को मिला था, हमें भी मिल जाएगा। यह आशा निराशा में ही परिणत होती है। ईश्वर की कृपा इतनी सस्ती नहीं है, जो दो–चार रुपया या एक–दो घण्टे का समय किसी कर्मकाण्ड की टंट–घंट में लगा देने मात्र से मिल जाय। इसके लिए जीवन शोधन, निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से पूर्ण करनी होती है। श्रीसत्यनारायण व्रत–कथा के इस कार्य को जनमानस में यदि ठीक तरह पहुँचाया जा सके, तो उससे वस्तुतः एक बड़े पुण्यफल का उद्भव होगा। कथावाचकों एवं

विचारशील सुनने वालों को इस व्रत के धर्मानुष्ठान का ऐसा ही सदुपयोग करना चाहिए ।

"युग निर्माण योजना" के अन्तर्गत जनजीवन में सत्यनिष्ठा जागृत करने तथा तदनुरूप आचरण करने का साहस जागृत करने के लिए श्रीसत्यनारायण व्रत कथा को एक अति उपयोगी माध्यम के रूप में अपनाया गया है । कथा में केवल व्रत की फलश्रुति ही नहीं, व्रत का सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक रूप भी उभारा गया है । लोग उसे सुन–समझकर सत्यनिष्ठ बनें, सत्यमय जीवन–क्रम अपनाकर व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन समुन्नत एवं सुखी बनावें और सत्याचरण के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने तथा जन–जीवन को उसकी प्रेरणा देने के लिए कथा–समारोह करें, यह एक स्वस्थ परिपाटी है, जिसे अपनाया जाना चाहिए ।

सत्यव्रत की कथा देश के अनेक भागों में बहुत लोकप्रिय है । लोगों की श्रद्धा भावना इस प्रसंग में सहज ही उभर आती है । कुशल कथावाचक श्रीसत्यनारायण के तथ्यों को विविध उदाहरणों के प्रयोग से उभारकर इस माध्यम से प्रखर लोकशिक्षण कर सकते हैं । युग निर्माण योजना द्वारा यह अभियान चलाया जा रहा है कि कथा के आयोजनों के माध्यम से जन–साधारण को सच्चा सत्यव्रती बनाया जाय ।

कथा आयोजन विभिन्न ढंग से विभिन्न स्तरों पर किए जा सकते हैं । पारिवारिक स्तर पर अथवा सार्वजनिक स्तर पर भी इनका प्रचलन किया जाता है । कथा किसी भी स्तर की हो, उसे आकर्षक तथा सुरुचिपूर्ण वातावरण बनाकर कहने का क्रम अपनाया जाय । प्रचलित परिपाटी एक ही बार में सम्पूर्ण कथा कहने की है,

किन्तु अधिक व्याख्या के साथ समझाने के लिए उसे पाँच दिन तक प्रतिदिन एक अध्याय कहकर पाँच दिवसीय आयोजन बनाया जा सकता है ।

कथा व्यवस्था के लिए आकर्षक मण्डप बनाया जाय और उसमें सत्यरूपी भगवान की प्रतिमा या तस्वीर स्थापित की जाय । पूजा उपकरणों से चौकी को सुसज्जित किया जाय, केले के खम्भ, आम-अशोक आदि के पत्ते, पुष्प गुच्छ, झण्डियों आदि के द्वारा वह सजावट ऐसी की जाय जिससे दर्शकों में स्वतः ही उल्लास एवं आकर्षण उत्पन्न हो । कलश, घृत-दीप, अगरबत्ती आदि यथास्थान स्थापित किए जाँय ।

साज-सज्जा समयानुकूल न्यूनाधिक भी की जा सकती है । एक दिवसीय पारिवारिक आयोजन में सामान्य सजावट भी पर्याप्त मानी जा सकती है और सार्वजनिक पंचदिवसीय आयोजनों में देवमण्डप, व्यासपीठ आदि अधिक आकर्षक बनाने उचित हैं ।

वातावरण में उत्साह भरने के लिए सार्वजनिक कथा आयोजनों के पूर्व यज्ञों की तरह जल-यात्रा तथा वेदी स्थापना के प्रकरण भी जोड़े जा सकते हैं । ऐसे आयोजनों के अन्त में पूर्णाहुति भी गायत्री यज्ञ द्वारा कराई जानी चाहिए । प्रथम दिन जल-यात्रा एवं देवपूजन के बाद कथा प्रारम्भ की जाय तथा अन्त में कथा समाप्त करके गायत्री यज्ञ किया जाय । नित्य एक अध्याय की कथा उपयुक्त प्रकरणों के साथ विस्तारपूर्वक कही जाने से लोगों की मनोभूमि में विषय भली प्रकार बैठता चलता है ।

इस प्रकार के पंचदिवसीय कथा आयोजनों की श्रृंखला गाँव-गाँव में, मोहल्लों-मोहल्लों में बनाई जा सकती है ।

कथा का समय ऐसा रखा जाय जिसमें अधिक से अधिक नर–नारियों को एकत्रित होने की सुविधा हो । इन आयोजनों के साथ सामूहिक संस्कार कराने का क्रम भी चलाया जा सकता है । कथा कहने के अतिरिक्त बचे हुए समय में लोक सेवी कथावाचक जन सम्पर्क द्वारा विभिन्न रचनात्मक गतिविधियाँ भी चला सकते हैं । इस प्रकार सार्थक एवं लोकोपयोगी कथा आयोजनों को सम्पन्न कराने का विधिवत् प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी युग निर्माण योजना द्वारा बनाई गई है ।

सामान्य रूप से कथा के पहले समयानुसार, स्वस्तिवाचन आदि कराकर कथा आरम्भ की जाय । श्रोताओं के हाथ में अक्षत, पुष्प देकर कथा प्रारम्भ करना अच्छी रीति है । अन्त में वही अक्षत–पुष्प पुष्पाञ्जलि मंत्र के साथ भगवान को समर्पित किए जायें । पाँच दिवसीय कथा क्रम में नित्य ही यह क्रम अपनाया जा सकता है । सार्वजनिक आयोजनों में श्रोता यदि बहुत अधिक हों और यह व्यवस्था न बन सकती हो तो अक्षत पूर्ण भाव से कथा सुनने तथा श्रद्धा–सुमन चढ़ाने की भावनात्मक व्याख्या कर देनी चाहिए ।

अन्त में आरती, शुभकामना, विसर्जन तथा प्रसाद वितरण आदि सहज क्रम से कराये जायें ।

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

।। प्रथम अध्याय ।।

व्यास उवाच-

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।
प्रपच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ।।१।।
उपायं चिन्तयामासु मिलित्वा मुनयो नृणम् ।
निवारणार्थं कष्टानां सुख सम्वर्धनाय च ।।२।।

व्यास जी ने कहा-एक बार नैमिषारण्य नामक पुण्य स्थल में शौनकादि ऋषियों ने महान पौराणिक श्रीसूत जी से अपनी जिज्ञासा प्रकट की । ऋषि-मुनि समय-समय पर इसी प्रकार एकत्रित होकर मनुष्य मात्र के दुःख निवारण और सुख सम्वर्धन के उपाय खोजा करते थे ।।१-२।।

शौनक उवाच-

व्रतेन तपसा किम्बा प्राप्यते वाञ्छितं फलम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्य महामुने ।।३।।

सूत उवाच-

नारदेनैव संपृष्टो भगवान्कमलापतिः ।
सुर्षये यथैवाह तच्छृणुध्व समाहिताः ।।४।।
एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाङ्क्षया ।
पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मृत्युलोकमुपागतः ।।५।।

ऋषियों ने पूछा-ऐसा कौन-सा व्रत या तप है जिसे करने से सभी लोग वांञ्छित फल पा सकते हैं, यह विषय हमें भली प्रकार समझाइए ।

सूतजी बोले-एक बार नारद जी ने भी भगवान

विष्णु से ऐसा ही प्रश्न किया था, उस प्रसंग को मैं कहता हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें । एक बार नारद जी लोक कल्याण की भावना से विविध लोकों में विचरण करते हुए मृत्यु लोक पहुँचे ।।३-४-५।।

ततो दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नाना क्लेश समन्वितान् ।
नाना योनि समुत्पन्नान्क्लिश्यामानान्स्वकर्मभिः ।।६।।
केनोपायेन चेतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् ।
इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ।।७।।
तंदृष्टुं नारदो गत्वाविष्णुं स्तोतुमुपाक्रमात् ।
स्तुत्याऽवोचत्प्रहष्ट्वा तभगवाँल्योकरक्षकः ।।८।।

वहाँ उन्होंने अधिकांश मनुष्यों को अपने ही असत्कर्मों के प्रभाव से नाना प्रकार के कष्ट पाते देखा । उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई तथा प्राणियों के कष्ट और दुःख कैसे मिटें, यह सोचते हुए विष्णुलोक पहुँचे । वहाँ भगवान विष्णु के सामने पहुँचकर उन्होंने उन जगद्पालक की स्तुति की । स्तुति सुनकर भगवान ने नारद जी से उनका उद्देश्य पूछा ।।६-७-८।।

श्रीभगवान उवाच-

किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्त्तते ।
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ।।९।।

नारद उवाच-

मर्त्यलोके जनाः सर्वे नाना क्लेश समन्विताः ।
नानायोनि समुत्पन्नाः पच्यन्ते पाप कर्मभिः ।।१०।।
उपायः कथ्यतां कश्चित्कृपाचेतन्ममोपरि ।
येन कर्म विधेर्भंगो न स्याच्च कष्ट-मोचनम् ।।११।।

भगवान बोले-हे नारद ! आप किस उद्देश्य से आये हैं, अपने मन की बात निःसंकोच कहें । मैं आपकी शंका का समाधान बताऊँगा ।

नारदजी बोले—हे प्रभो ! मृत्युलोक में प्राणी अपने पाप कर्मों के फलस्वरूप तरह—तरह की हीन परिस्थितियों में जन्म लेकर भीषण कष्ट पा रहे हैं । आप मेरे ऊपर कृपा भाव रखते हैं, तो कोई उपाय बतायें कि कर्मफल का नियम भी न टूटे और प्राणियों के दुःखों का निवारण भी हो जाय ।।९—१०—११।।

श्रीभगवान उवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानुग्रह काङ्क्षया ।
यत्कृत्वा मुच्यते मोहात्तच्छृणुष्व वदामि ते ।।१२।।
सत्यनारायणस्यैकं व्रतं विधिविधानतः ।
कत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।१३।।

नारद उवाच—

किं फलं किं विधानं च कृतं केन तद्व्रतम् ।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि कदा कार्यंव्रत प्रभो ।।१४।।

भगवान ने कहा—नारदजी ! आपने लोक हित की भावना से बड़ा सुन्दर प्रश्न किया, इससे मुझे प्रसन्नता हुई । मैं तुम्हें ऐसा व्रत बताता हूँ, जिससे यह दुविधा दूर हो । 'श्रीसत्यनारायण व्रत' ऐस व्रत है, जिसे विधि—विधानपूर्वक करने से इस लोक में सुख और अन्त में सद्गति प्राप्त होती है ।

नारदजी ने पूछा—हे प्रभो ! इस व्रत का क्या विधान है ? क्या फल है ? और उसे किसने पहले किया—यह सब कुछ मुझे विस्तारपूर्वक समझाइए ।।१२—१३—१४।।

श्रीभगवान उवाच

नारायण स्वरूपं हि सत्वमस्ति च यो नरः ।
व्रतं गृहणाति सत्यस्य भवति तस्यानुकम्पितः ।।१५।।
न्यायित्वं समदर्शित्वं कर्मप्राधान्य चिन्तनम् ।
ह्येषा सत्य प्रभोः सन्ति प्रीतिपात्रा भवन्ति ते ।।१६।।

ते लभन्ते सुखं लोके चिर शान्ति परत्र च ।
सेव्यमतो हरेर्नित्यं सत्यं रूपं हि निश्चितम् ।।१७।।

भगवान बोले—सत्य ही भगवान का स्वरूप है । ऐसा समझकर जो व्यक्ति सत्य व्रत अपनाता है, वह प्रभु की कृपा का लाभ अवश्य पाता है । न्यायकारी, समदर्शी और कर्म को प्रधानता देने वाले सत्यरूपी प्रभु सत्य साधना से प्रसन्न होते हैं और उनकी कृपा से साधकों को लौकिक सुख और पारलौकिक शान्ति निश्चित रूप से प्राप्त होती है ।।१५—१६—१७।।

नारद मर्त्य लोकेऽस्मिन्मानवाः सत्यधर्मयोः ।
लभन्त दुःखमत्यन्तं त्यागेनैव च सर्वथा ।।१८।।
ते चेत्सत्यव्यवहारं धर्मस्य चरणे तथा ।
समुद्मताः स्युःकर्त्तुवै मुक्तिं दुखेभ्य प्राप्नुयुः ।।१९।।

नारद उवाच—

सत्य धर्मस्य किंचापि स्वरूपं व्यवहारिकम् ।
प्रभो ! वद मां सुस्पष्टं कृपां कृत्वा ममोपरि ।।२०।।

हे नारद ! मृत्युलोक में लोग सत्यधर्म की उपेक्षा के कारण ही अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं । वे यदि केवल शब्दों से नहीं आचरण से भी सत्यधर्म के पालन के लिए तत्पर हो जायें, तो निश्चित रूप से दुःखों से छुटकारा पा सकते हैं ।

नारद जी पूछने लगे—सत्यधर्म का व्यवहारिक स्वरूप क्या है ? हे प्रभो ! कृपा करके स्पष्ट कहिए ।।१८—१९—२०।।

किमाचरेत्वकोदृशं च लोके नित्यं हि मानव ।
सम्यग बोधय तत्सर्वं धर्त्ता सत्यव्रतस्य वै ।।२१।।

श्रीभगवान उवाच—

ज्ञेयं सत्य—व्रतेनापि मर्म सत्यस्वरूपिणः ।
श्रृणु सावहितं सत्यकं तथैव च समाचरेत् ।।२२।।

न चास्ति शब्दवशं सत्यं केवलं वचः ।
धर्मस्य रक्षणं येन स सत्यः प्राणिनां हितः ।।२३।।

सत्य व्रत धारण करने वाला व्यक्ति संसार में किस प्रकार आचरण करे ? यह समझाइये ।

भगवान बोले—हे नारद ! सत्यव्रती को चाहिए कि वह सत्यव्रत का मर्म भली प्रकार समझे और उसी के अनुसार आचरण करे । केवल वचन से ही सत्य का पालन नहीं हो जाता और न सत्य शब्दों के वश में होता है, जिससे धर्म की रक्षा और प्राणिमात्र का हित होता है, वही वस्तुतः सत्य है ।।२१-२२-२३।।

चत्वारः सन्ति धर्मस्य पादा वृषभरूपिणः ।
विवेकः संयमः सेवा तुरीयः साहसः शुभः ।।२४।।
एसा चतुष्टयी प्रोक्ता गुणानां नित्यव्रतिनाम् ।
कर्त्तव्या सबला हेयुषा सत्यव्रतेन सर्वदा ।।२५।।
आत्मनो बोधने शोधे विकासे निर्मितौ क्वचित् ।
विरतिंन भव येषां ये सत्यव्रत पोषकाः ।।२६।।

धर्म रूपी वृषभ के चार चरण कहे गये हैं—विवेक, संयम, सेवा और साहस । सत्य साधक को चाहिए कि इन श्रेष्ठ गुणों को सतत् व्यवहार में लाता रहे और उन्हें क्रमशः अधिक सफल बनाता चले । उसे आत्मचिन्तन, आत्मशोधन, आत्मनिर्माण और आत्मविकास के क्रम में किसी भी प्रकार की ढील नहीं आने देनी चाहिए ।।२४-२५-२६।।

स्वीयौदार्येण व्रतिनः पतितोत्थान कर्मणि ।
श्रम साहस धैर्याश्च प्रयतन्ति निरन्तरम् ।।२७।।
निखिलं कार्यजातं ते विवेक-निकषे सदा ।
शोधयन्तः समुचितं तन्याय्यं स्वीकुर्वन्तिच ।।२८।।
व्यापकत्वं दयायुत्वं निष्पक्षत्वं च सर्वदा ।
न्यायप्रियता जानन्ति सत्यनारायणस्य च ।।२९।।

सत्यव्रती का कर्तव्य है कि उदारतापूर्वक नीचे गिरे हुए लोगों को ऊँचा उठाने की चेष्टा करे और इस कार्य में साहस तथा धैर्यपूर्वक निरन्तर लगा रहे। सत्यव्रत वाला प्रत्येक विषय को विवेक और न्याय की कसौटी पर कसता है और समुचित बात को ही स्वीकार करता है। ऐसा व्यक्ति अच्छी तरह जान लेता है कि सत्यरूपी भगवान सर्वत्र उपस्थित हैं और दयालु होते हुए भी निष्पक्षता और न्याय का पालन करते हैं।।२७-२८-२९।।

अतस्तदर्चा कुर्वन्ति व्रतिनः सत्य वादिनः।
सद्व्यवहारैरेव लोके सततं च कर्मभिः।।३०।।
विश्वं व्रतिनो मन्यन्त स्वरूपं वृहद्ब्रह्मणः।
भक्तिरतो भगवतः सेवैवाऽस्ति प्राणिनाम्।।३१।।
त्यक्त्वा स्वीयसुखानां च चिन्तां तु व्रतधारिणः।
समाज सुख वृद्धयर्थं सततं प्रयतन्ति च।।३२।।

इसलिए सत्यव्रती का निश्चय होता है कि संसार में सदा उत्तम व्यवहार और शुभ कर्म करना ही भगवान की सच्ची पूजा है। वह इस समस्त जगत् को भगवान का ही विराट् रूप मानता है, इसलिए समस्त प्राणियों की सेवा, हित-चिन्तन ही उसे भगवान की सच्ची भक्ति और अर्चना जान पड़ती है। ऐसा मनुष्य अपने सुख की चिन्ता नहीं करता वरन् समाज के सुख की अभिवृद्धि का ही सबसे पहले ध्यान रखता है।।३०-३१-३२।।

नास्वस्थंचवपुश्चितं व्रतिनः क्वापि कुर्वते।
संयमेनोभस्यापि ह्यारोग्यं हि नयन्ति ते।।३३।।
स्वीयाहारविहारौ च विधेयौ नियमान्वितौ।
इन्द्रियाणा तितिक्षुर्हि कर्त्तव्य नमनं दृढ़म्।।३४।।
सत्य-व्रतवती चिन्ता नैराश्योद्वेगभीतयः।
मनो विकृत्तिभिर्नून भ्रान्तिर्नैव प्रजायते।।३५।।

इस सेवा कार्य को समुचित रीति से सम्पन्न करने लिए वह अपने शरीर और मन के आरोग्य को भी स्थिर रखने का पूरा ध्यान रखता है । आहार-विहार की नियमितता तथा निरीक्षण द्वारा इन्द्रियों को उपयुक्त कार्यों में लगाये रखता है, भटकने नहीं देता । सत्यव्रती को चिन्ता, निराशा, उद्वेग, भय आदि मनोविकार भ्रान्ति में नहीं डाल पाते हैं ।।३३-३४-३५।।

दार्ढ्यं सन्तुलनं दूरदर्शित्वं भीति हीनता ।
प्रसादश्चोज्ज्वले नूनं भविष्ये प्रत्ययो दृढः ।।३६।।
स्वभाविका गुणा ह्येते वसन्ति तस्य मानसे ।
प्रकाशन्ते मलं शुभ्रं स्वरूपं चास्य मानुषम् ।।३७।।
विनय सौजन्य पूर्णावाणी सत्प्रेम-संयुता ।
मधुरा च प्रिया भद्रा परेषां हितकारिणी ।।३८।।

दृढ़ता, सन्तुलन, दूरदर्शिता, निर्भयता, प्रसन्नता और उज्ज्वल भविष्य पर दृढ़ विश्वास सत्यव्रती के स्वाभाविक गुण होते हैं । जो दोषों को दूर रखकर व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाते हैं । उसकी वाणी नम्रता, सज्जनता, सत्य, प्रेम से युक्त मधुर और प्रिय लगने वाली होने के साथ दूसरों का हित साधन करने में भी समर्थ होती है ।।३६-३७-३८।।

सौक्ष्यमसत्यं सत्यं च कर्त्तव्यं मन्यते व्रती ।
महाप्रलोभनाच्चापि कर्तव्यं न जहाति सः ।।३९।।
उपार्जनं विधातव्यं श्रमेण न्याय पूर्वकम् ।
कार्पण्यापव्ययाभावः सत्यव्रस्तय लक्षणम् ।।४०।।
विश्वा विभूतयः सर्वा धर्म ज्ञानादिकाः स्मृताः ।
मान्यः स पूत निक्षेपो नेमं स्वार्थे प्रयोजयत् ।।४१।।

वह कर्तव्यों की तुलना में सुखों को तुच्छ मानता है और बड़े से बड़े प्रलोभन भी उसे कर्तव्य से डिगा नहीं

पाते । श्रम और न्यायपूर्वक उपार्जन, कृपणता तथा अपव्यय से दूर रहकर धन का उचित व्यय करना सत्यव्रती के लक्षण हैं । वह धन-ज्ञानादि विभूतियों को ईश्वर की पवित्र धरोहर मानता है और केवल उन्हें स्वार्थ में ही न लगाये रहकर जनहित के लिए भी लगाता रहता है ।।३९-४०-४१।।

मालाकारः इवोद्याने सदा कृत्य-परायणः ।
पोषणं वर्धनं चास्य कुरुतो नियमैर्युतः ।।४२।।
सर्वेषां हि हितं स्वीय मन्यते योनरः सदा ।
स्वस्मै यदप्रियं भाति न परेभ्यस्तदाचरेत् ।।४३।।
नालसाः सन्ति ते क्वापि स कर्म श्रमिणः सदा ।
व्रतिनः क्षणमप्येकं व्यर्थं कुर्वन्ति न क्वचित् ।।४४।।

ऐसा व्यक्ति अपने परिवार और समाज को उपवन मानकर कर्तव्यनिष्ठ माली की तरह उनका शोधन, पोषण और सम्वर्धन करता रहता है । उसे सबके हित में ही अपना भी हित दिखाई देता है तथा स्वयं को बुरा लगने वाला व्यवहार वह दूसरों के साथ नहीं करता । वह आलसी या प्रमादी नहीं होता, वरन् सत्कार्य में श्रम करने को सदा तत्पर रहता है । एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाता ।।४२-४३-४४।।

निदेर्ष्या द्वेष पैशुन्य मद मात्सर्यादि दूषणैः ।
रहितं हृदयन्तेषां न छिद्रान्वेषिणाश्च ते ।।४५।।
एवं स्वहृदि नारद जीवनाचरणेऽपिच ।
नारायणं सत्यरूपं यः स्थापयति सर्वदा ।।४६।।
कुरुते तत्समावेशं निष्ठया च दृढः खलु ।
स एव जायते पात्रं प्रसादस्य प्रभोः सदा ।।४७।।

वे दूसरों में ही दोष ढूँढ़ने के स्वभाव से मुक्त रहते हैं, परनिन्दा करने तथा ईर्ष्या, द्वेष, चुगलखोरी,

मद–मत्सर आदि दोषों से दूर रहते हैं । इस प्रकार जो मनुष्य सत्यरूपी भगवान को अपने हृदय में स्थापित करता है और आचरणों में निष्ठापूर्वक समाविष्ट कर लेता है, वह निस्संदेह भगवान की कृपा का अधिकारी बन जाता है ।।४५–४६–४७।।

पलायन्ते च कष्टानि त्रस्तानीव तु सत्यतः ।
सर्व विघ्नानि लोकेऽत्र सत्यस्य व्रतधारिणाम् ।।४८।।
सुखशान्तिमयं ते च व्यतीयन्ति स्व जीवनम् ।
भवबाधाविनिर्मुक्तः स्वर्गवासि सुरा इव ।।४९।।
तस्मान्नारदत्वं मर्त्य–लोकंगत्वा च सत्वरम् ।
मनुष्येभ्यो हि सत्यस्य व्रत सन्देशं ब्रूहिच ।।५०।।

सत्यव्रतधारियों के पास से संसार के सभी कष्ट आपत्तियाँ डरकर भाग जाते हैं वे विघ्न–बाधा रहित जीवन जीते हैं । उन्हें भव–बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है और वे स्वर्ग के देवताओं की तरह सुख और संतोष का जीवन व्यतीत करते हैं । इसलिए हे नारद ! तुम मृत्युलोक में जाकर शीघ्र ही मनुष्यों तक उत्तम व्रत का सन्देश पहुँचा दो ।।४८–४९–५०।।

श्रावय प्रेरणां यच्छ तदाचारस्य जीवने ।
तेषामेवं हि दुःखानि दूरं याभ्यन्ति निश्चितम् ।।५१।।
भगवतोऽनुकम्पां च मत्वान्ते नारदस्तदा ।
सत्यव्रत–प्रसाराय प्राणि षुप्राचलद् दुत्तम ।।५२।।

इस व्रत को सुनकर, उससे प्रेरणा लेकर अपने आचरण में इसे लाने से उनके समस्त कष्ट अवश्य दूर हो जायेंगे । नारदजी भगवान का अनुग्रह मानते हुए उनके चरणों में प्रणाम करके, इस महाव्रत का संसार में प्रसार करने तुरन्त चल पड़े ।।५१–५२।।

।। इति श्रीसत्यनारायण व्रत कथायां प्रथमोध्यायः ।।

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

।। द्वितीय अध्याय ।।

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज ।
कश्चित्काशी पुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽति निर्धनः ।।१।।

सूत उवाच-

द्विजो नाम्ना सदानन्दो दैन्यभावमुपागतः ।
उदर-पूर्त्तये भिक्षांकुर्वन् हि व्यचरत्सदा ।।२।।

सूतजी कहने लगे-हे श्रेष्ठजनो ! अब मैं आपको सत्यव्रत धारण करने वालों की कथा सुनाता हूँ । किसी समय काशीपुरी में सदानन्द नाम का एक बहुत गरीब ब्राह्मण निवास करता था । दरिद्रता के कारण दीन भाव से व्याकुल होकर वह उदर पूर्ति के लिए भीख माँगता इधर-उधर घूमा करता था ।।१-२।।

भगवान्सर्वदा लोके जिज्ञासूनां कृते खलु ।
प्रेरणया विचारस्य रूपे दिशेच्च पद्धतिम् ।।३।।
कृपालुर्मनसाभूत्वा प्रादुर्भूतो गतस्तु तम् ।
साह्मय्यं तस्य कर्तुं च जातं मनसि श्री हरेः ।।४।।

वृद्ध ब्राह्मण उवाच-

किमर्थं भ्रमते विप्र महीं नित्यं सु दुःखितः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां द्विजसत्तम ।।५।।

लोकरक्षक भगवान जिज्ञासुओं को सही सद्विचार तथा सत्प्रेरणा द्वारा मार्ग-दर्शन देने के लिए स्वयं प्रकट होते हैं । वे सदानन्द की सहायता के लिए करुणा रूप होकर एक वृद्ध महाभाग के रूप में उदय हुए और उसके पास जाकर कहने लगे-हे विप्र ! तुम इस प्रकार दुःखित अवस्था

में इधर-उधर क्यों भटकते फिरते हो । मैं तुम्हारा सब वृत्तांत जानना चाहता हूँ ।।३-४-५।।

सदानन्द उवाच-

दरिद्रोऽस्मि द्विजो ह्यर्चा कुर्वन्नपि क्षुत्पीड़या ।
विचरामि समादातुं भिक्षां जठर-पूर्त्तये ।।६।।
उपायं वद मे दूरी कर्तुं जानासि चेत्प्रभो ।
दारिद्र मोचनेयन भवेद् दुर्भाग्य-जीविनः ।।७।।

वृद्ध ब्राह्मण उवाच-

सुदूरं हि गतस्त्वं तु विप्रोचित सत्कर्मणः ।
कष्टं प्रोप्नोषि तेनैव निदानं ह्यसत्सेवनम् ।।८।।

सदानन्द ने कहा-हे महाभाग ! मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, भजन-पूजन करता हूँ तथा भूख मिटाने के लिए भीख माँगता हूँ । इस दीन और अभावग्रस्त जीवन से मैं बहुत दुःखी हूँ । इसके निवारण का कुछ उपाय आप जानते हों, तो कृपा करके बतायें ।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा-हे सदानन्द ! तुम ब्राह्मणोचित सन्मार्ग से भटक गये हो । असत् मार्ग पर चलने के कारण ही तुम यह कष्ट पा रहे हो ।।६-७-८।।

सत्यधर्मस्त्वया विप्र पालनीयो निरन्तरम् ।
सत्यव्रताचरणं तुहि सौभाग्यं दास्यांत महत् ।।९।।
आकर्षणं हि भिक्षायास्त्याज्यं चान्नमयं त्वया ।
सत्यमार्गवलम्बेन सेवनीया दया हरेः ।।१०।।
यज्ञार्थमुपकारार्थं विपश्च निवारणे ।
याचनापि शुभा ध्येयान स्वार्थे तां प्रयोजयेत् ।।११।।

तुम्हें अपना सत्यधर्म समझना होगा तथा सत्यव्रत का पालन करने से तुम इस भ्रान्तिपूर्ण जीवन से मुक्ति पाकर ब्राह्मणोचित गौरव पा सकोगे । भिक्षा आदि का असद् आकर्षण छोड़ दो, सत्यमार्ग का अवलम्बन तुम्हें भगवान

की कृपा का पात्र बना देगा । याचना केवल यज्ञार्थ, जनहित के लिए अथवा विपत्ति निवारण के लिए ही करनी चाहिए, सवार्थ पूर्ति के लिए माँगना अनुचित है ।।९-१०-११।।

उद्देश्योदर-पूर्ति च भिक्षा हि वृजिनं भवेत् ।
दैन्यमुत्पादयत्येतन्नाशकं ब्रह्मतेजसः ।।१२।।
समाजाल्लभते विप्रो यदनेकगुणं पुनः ।
सेवा साधन रूपेण तं ददाति सुनिश्चियम् ।।१३।।
त्यक्त्वा दैन्यं भयं चापि दुरालस्यमकर्मण्यताम् ।
कुरुष्व जाग्रतं स्वीयं ब्रह्मतेजस्तु विप्र ! त्वम् ।।१४।।

पेट भरने का माध्यम भिक्षा को बनाना तो पाप है । इससे ब्रह्म तेज का नाश होता है और दीनता का भाव बढ़ता है । ब्राह्मण तो समाज से जितने अनुदान लेता है उससे अनेक गुने अनुदान ज्ञानदान तथा सेवा साधनों के रूप में समाज को देता रहता है । हे विप्र ! तुम दीनता, भय, आलस्य और अकर्मण्यता छोड़कर अपने ब्रह्म तेज को जागृत करने के लिए साधना करो ।।१२-१३-१४।।

दुर्मतिर्जायते नाशाद् विप्रस्य हि ब्रह्मतेजसः ।
भूसुरश्च भवत्येव दुर्म त्येवासुरस्तथा ।।१५।।
स्व कर्तव्यच्युतो विप्रो दुःखमाप्नोति च स्वयम् ।
सत्समाजोहि पतितः पतन्ति यत्र ब्राह्मणः ।।१६।।
मुक्तिं लभस्व दुर्भाग्यात्सन्त्यज्य विप्र दीनताम् ।
ब्रह्म कर्मसु संलग्नो भवानन्दयुतश्च त्वम् ।।१७।।

ब्रह्म तेज नष्ट हो जाने से ब्राह्मण की बुद्धि दूषित हो जाती है और भूसुर कहा जाने वाला ब्राह्मण दुर्बुद्धि के कारण असुरों जैसे आचरण करने लगता है । अपने कर्तव्य से गिरकर ब्राह्मण स्वयं तो दुःख पाता ही है,

साथ ही जिस समाज में ब्राह्मण वर्ग पतित हो जाता है, उस समाज का भी पतन हो जाता है । इसलिए दीनता को छोड़कर इस दुर्भाव से मुक्ति पाओ, ब्राह्मणोचित कार्यों में लगकर आनन्दपूर्वक रहो ।।१५-१६-१७।।

तवोत्थानाद्धि सर्वेषां श्रेयो निष्पद्यते खलु ।
अतस्त्वंशीघ्रमुत्थाय कल्याणं कुरु संस्कृते: ।।१८।।
विद्याध्येया च स्वाध्यायी भव धर्मं प्रचारय ।
गुण कर्म स्वभावानां दृष्टयोऽदर्शोभवेत्तथा ।।१९।।
गत्वा प्रतिगृह सर्व-जन-चेतसि धार्मिकीम् ।
जागृतिं कुरु सर्वत्र कर्त्तव्यञ्च तवारित तत् ।।२०।।

ब्राह्मणों द्वारा सत्य धर्माचरण से संसार का कल्याण होता है, यह समझकर तुम शीघ्र संसार के हितकारी कार्यों में लग जाओ । विद्या की वृद्धि करो, स्वाध्याय करो और धर्म का प्रचार करो । तुम्हें स्वयं गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से दूसरों के सामने उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहिए । तुम्हारा कर्तव्य है कि घर-घर जाकर जन-जन में सच्ची धार्मिक चेतना जागृत करो ।।१८-१९-२०।।

भगवतो वचः श्रुत्वा वृद्ध ब्राह्मण-रूपिणः ।
कृतः सुधारो दीनन ह्याचारं परिवर्तनं च ।।२१।।
प्रतिष्ठा वर्धते तेन लोकः श्रद्धां करोति च ।
सर्वेऽभावा विनश्यन्ति तेजस्वित्वच गच्छति ।।२२।।
सविप्रो हि ततः सत्यनारायण व्रतस्य च ।
ख्यापयितुं महत्वं तु धर्मानुष्ठानरूपिणम् ।।२३।।

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में भगवान का आदेश मानकर ब्राह्मण सदानन्द ने दीनता छोड़कर अपने आचरण को पूरी तरह सुधार लिया । सत्यव्रत के पालन से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी तथा समाज के श्रद्धायुक्त सहयोग से उसके

सारे अभाव मिट गये और वह तेजस्वी जीवन जीने लगा। तब वह सत्यधर्म की महत्ता दर्शन के लिए धर्म का आयोजन भी करने लगा ।।२१-२२-२३।।

आयोजनममायां वा पूर्णिमाया रवौ तथा।
दिने च नियमेनैव विदधातिस्म शोभने ।।२४।।
आयोजने तु सम्प्राप्ते ह्यीदृशे कुत्रचित्कृता।
स्वेच्छा सातु व्रतं चेमं सत्यनारायण प्रभोः ।।२५।।
प्राप्तः काष्ठस्य विक्रेता महत्तां दृष्टवान स्वयम्।
अभूत्सो सादृत स्तं च प्रार्थयद्धि नयेन सः ।।२६।।

सदानन्द नियमपूर्वक रविवार, पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य शुभ अवसरों पर सत्यव्रत के प्रचार के लिए आयोजन करता था। ऐसे ही एक आयोजन के अवसर पर एक लकड़हारा वहाँ पहुँचा। समारोह देखकर उसके मन में भी अधिक जानने की जिज्ञासा प्रकट हुई तथा सत्यव्रत का महत्व समझकर उसे प्रेरणा मिली तथा अभूतपूर्व उत्साह उसने अपने अन्दर अनुभव किया ।।२४-२५-२६।।

सदानन्द उवाच-

लालायितोऽभवद्द क्षातुं सत्यस्य शुभदं व्रतम्।
व्यक्तेच्छा पालने तस्य याचितं मार्ग दर्शनम् ।।२७।।
श्रमस्यमहती सम्पद् वर्तते तव सन्निधौ।
भ्रातः! व्रतेन सत्यस्य ते विनश्यत्य ऽभावता ।।२८।।
सम्मान्यो हि श्रमो नित्यं कार्यश्च लग्नचेतसा।
कुर्यात् सद्व्यवहारेण सत्येन धर्म साधनम् ।।२९।।

आयोजन समाप्त होने पर लकड़हारे ने सदानन्द से सत्यव्रत के नियम बताने तथा तत्सम्बन्धी मार्गदर्शन का आग्रह किया।

सदानन्द ने कहा-हे भाई! तुम अपने आपको दीन

मत समझो, तुम्हारे पास तो श्रम की महान पूँजी है, सत्यव्रत पालन करने से तुम्हारे अभाव अवश्य नष्ट होंगे। तुम श्रम के प्रति सम्मान के भाव जागृत करो, पूरे मनोयोग से काम करो, ईमानदारी तथा सद्व्यवहार का पालन करके तुम सत्य धर्म के साधक बनो ।।२७-२८-२९।।

सत्यनारायण स्येदं व्रतं सर्वेप्सित प्रदम् ।
तस्य प्रसादान्मे सर्वं धन धान्यादिकं महत् ।।३०।।
तस्माद्देतद् व्रतं ज्ञात्वा काष्ठ क्रेताऽति हर्षितः ।
सत्यनारायणं देवं चिन्तयन्नगरं ययौ ।।३१।।
धारितं च व्रतं तेन काष्ठ विक्रयिणा ततः ।
गुण कर्मस्वभावाश्चसत्यानु सृति शोधिताः ।।३२।।

सत्यनारायण का यह व्रत समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला है, इसी के पालन से मुझे धन-वैभव प्राप्त हुआ है। काष्ठ विक्रेता ब्राह्मण से यह सब विचार जानकर, प्रसन्न होकर, सत्यनारायण के व्रत का चिन्तन करता हुआ अपने स्थान को चला गया। वह भी लकड़ी बेचने के साथ सत्यव्रत का पालन करने लगा और उसने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सत्यव्रती के अनुरूप संशोधन कर लिया ।।३०-३१-३२।।

यत्रापि वर्त्तते सत्यं प्रतिभा तत्र वै ध्रुवा ।
प्रतिष्ठा च तयावश्यं नाभावः कश्चिदेव च ।।३३।।
आसीत्पूर्वतु तस्यापि चात्यल्पः काष्ठविक्रयः ।
समृद्धोऽसौ व्रतेनैव कृतः सत्य प्रभोः खलु ।।३४।।
प्रबुद्धमर्जितं स्वीयं शक्तिञ्चापिन्ययोजयेत् ।
स व्यापक प्रचाराय सत्यनारायणस्य तु ।।३५।।

जहाँ सत्य का पालन होता है, सद्बुद्धि निश्चित रूप से बनी रहती है। सद्बुद्धि के कारण समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है और प्रतिष्ठा पा लेने पर सारे अभाव

स्वयं दूर हो जाते हैं । पहले उस लकड़हारे की बहुत कम बिक्री होती थी, सत्यव्रत का अवलंबन लेने से उसका कारोबार बढ़ा तथा वह धनी हो गया । अपने द्वारा अर्जित धन को वह सत्यनारायण व्रत के व्यापक प्रचार में नियोजित करने लगा ।।३३-३४-३५।।

जातं तेनास्य सत्पुण्यंसौख्यं लोक हि चाधिकम् ।
व्रतस्यैव प्रभावोऽयं नाश्चर्यं किञ्चिदस्ति व ।।३६।।
विप्रः काष्ठस्य विक्रेता समृद्धोऽभव पूर्णतः ।
सद्गति सुख शांतिं च सम्प्राप्य हि व्रतेन च ।।३७।।
सत्यव्रत पालनस्य श्रद्धया चेच्च स्वीकृतिः ।
तथाऽन्यऽपि स्वकल्याणां कर्तुं शक्ता भवन्ति वै ।।३८।।

ऐसा करने से उसे बहुत पुण्य की प्राप्ति हुई और वह सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । सत्यव्रत वाले को इस प्रकार का लाभ मिलना स्वाभाविक ही है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं ब्राह्मण और लकड़हारे ने सत्यव्रत के प्रभाव से सुख, शान्ति और सद्गति प्राप्त करके जीवन को सार्थक बना लिया । इस प्रकार अन्य सब मनुष्य भी सत्यव्रत को धारण करके निश्चित रूप से कल्याण कर सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।३६-३७-३८।।

।। इति श्रीसत्यनारायण व्रत-कथायां द्वितीयोध्यायः ।।

o

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

।। तृतीय अध्याय ।।

सूत उवाच-

पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
पुराचोल्कामुखो नाम नृपश्चासीन्महामतिः ।।१।।
स्वकर्त्तव्य परो ह्यासीत्सत्य निष्ठो जितेन्द्रियः ।
अवितरत्सत् कार्येषु प्रदत्त प्रचुरं धनम् ।।२।।

सूतजी ने कहा-हे श्रेष्ठ मुनिगण ! अब आगे की कथा कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनिए । प्राचीनकाल में उल्कामुख नामक एक बुद्धिमान राजा था । वह जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्य परायण था । श्रेष्ठ कार्यों के लिए प्रचुर धन दान भी किया करता था ।।१-२।।

तस्य भार्यापि कर्त्तव्य-पालनेऽतिपरायण ।
सहयोगं हि कुर्वाणा चासीत्तत्कर्मसु सदा ।।३।।
आस्तां तौ दुदतुर्नित्यं सत्यव्रत परौ धनम् ।
आयोजनैः प्रजाभ्यश्च सत्यस्य प्रेरणां मुदा ।।४।।
भद्रशीला नदी तीरे हीदृशयोजनै शुभे ।
सम्मिलितोऽभवत्साधुर्नामा व्यापार-व्यावृतः ।।५।।

राजा उल्कामुख की पत्नी धर्म परायण थी और कर्तव्य पालन में राजा का सब प्रकार सहयोग किया करती थी । दोनों सत्यव्रत में बहुत निष्ठा रखते थे और सार्वजनिक आयोजनों द्वारा प्रजाजनों को सत्यधर्म की प्रेरणा दिया करते थे । भद्रशीला नदी के तट पर एक ऐसे ही आयोजन में साधु नामक व्यापारी भी सम्मिलित हुआ और उस आयोजन से प्रभावित होकर राजा से पूछने लगा ।।३-४-५।।

साधु उवाच–

किमर्थं क्रियते राजन् ! एतदायोजनं महत् ।
लाभं चास्य प्रभावं मे कृपया वद विस्तृतम् ॥६॥

राजा उवाच–

अयमस्ति समारोहः सत्यनारायण प्रभोः ।
सत्यव्रतस्य नित्यं च प्रसारः क्रियते मया ॥७॥
आचारेयुः स्वयं श्रेष्ठ पुरुषाः सत्य धर्म्मना ।
देया स्वानुभवेनापि परेभ्यः प्रेरणा सदा ॥८॥

साधु वैश्य ने पूछा–हे राजन् ! आप यह आयोजन किसलिए किया करते हैं ? इसका क्या लाभ और प्रभाव है ? कृपया मुझे भी यह सब बताइये । राजा ने उत्तर दिया–यह भगवान श्रीसत्यनारायण का पूजन समारोह है, मैं सत्यव्रत का पालन करता हूँ और उसी का प्रचार भी किया करता हूँ । श्रेष्ठ पुरुषों को चाहिए कि स्वयं सत्याचरण करें और दूसरों को वैसा ही करने के लिए अनुभव से प्रेरणा देते रहें ॥६–७–८॥

स्वीकारेण क्रमस्यास्य मम परिजनैः सह ।
परमं शान्ति–सौख्यं च ह्युपलब्धं निरन्तरम् ॥९॥

साधु उवाच–

भूपस्य वचनं श्रुत्वा साधुः प्रोवाच सादरम् ।
सर्वं कथय मे राजन् ! करिष्येऽहं तवोदितम् ॥१०॥
अभाव कष्टं क्षोभश्च ममाप्यस्ति स्वजीवने ।
मुञ्चेयं शरणत्वे हि सत्यनारायणस्य च ॥११॥

हे वैश्य ! जीवन में यही क्रम अपनाकर चलने के कारण भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा से मुझे अपने परिजनों तथा प्रजाजनों सहित सुख शान्ति उपलब्ध है । राजा के वचन सुनकर साधु वैश्य विनयपूर्वक कहने लगा कि हे राजन् ! इस विषय में मुझे विस्तार से समझाइए ।

मेरे भी मन में दुःख, कष्ट और अभाव रहते हैं, मैं भी भगवान श्रीसत्यनारायण की शरण लेकर उनसे मुक्ति पाऊँगा ।।९–१०–११।।

राजा उवाच–

वैश्य धर्मः समाजस्य पदार्थानां व्यवस्थितम् ।
अपेक्षितेन मूल्येन करोत्युत्पादनस्य च ।।१२।।
वैश्यः स्वीय समाजस्य संवर्ध्य निजकर्मभिः ।
शान्ति सौख्यंयशोभागी जायते जगतीतले ।।१३।।
पालयत्वं सत्यधर्मो स्वकीय जीवने सदा ।
सुख सौभाग्य–सम्पन्नो त्वं भविष्यसि वै ध्रुवम् ।।१४।।

राजा बोले–वैश्य का धर्म समाज की आवश्यकतानुसार शुद्ध वस्तुओं का उत्पादन और उनके उचित मूल्य पर वितरण की व्यवस्था करना है । सत्यधर्म का पालन करने वाला वैश्य अपनी तथा समाज की सम्पन्नता एवं सुख–शान्ति बढ़ाते हुए जीवन में प्रचुर यश का भागीदार बनता है । तुम भी अपने जीवन में सत्य धर्म का पालन करो । भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा से तुम्हें भी सुख सौभाग्य तथा सम्पन्नता अवश्य प्राप्त होगी ।।१२–१३–१४।।

ज्ञात्वा रूपं नृपात् सत्य व्रतस्य जीवनेऽपि तत् ।
धर्तुं च कृत संकल्पस्तं सम्पूज्य गतो गृहम् ।।१५।।
पत्नी लीलावतीं सर्व वृतं सोऽकथयत्ततः ।
सापि व्रतं च सत्यस्य श्रद्धयाऽपालयात्तथा ।।१६।।
भर्याया वर्धनं साधुर्ज्ञानस्य कृतवान् वणिक् ।
सुस्थितः परिवारस्य समृद्धिश्चाऽभवत्खलु ।।१७।।

राजा से सत्यव्रत का स्वरूप भली प्रकार समझकर साधु वैश्य ने अपने जीवनमें सत्यव्रत पालन का संकल्प लिया और अपने घर चला गया । घर में उसने अपनी

पत्नी लीलावती को सारा वृत्तान्त सुनाया और वह भी सत्यधर्म का पालन श्रद्धापूर्वक करने लगी । सत्यव्रती वैश्य धर्मपत्नी का ज्ञान और योग्यता भी बढ़ाने लगा फलस्वरूप उसके घर में व्यवस्था तथा सम्पन्नता तेजी से बढ़ने लगी ।।१५-१६-१७।।

जीविकाया महानशः प्रसाराय प्रतिश्रुतः ।
नारायणस्य सत्यस्य लोके ताभ्यां व्रतस्य च ।।१८।।
शरणागतो हि सत्य नारायणस्यावर्धत ।
समृद्धिर्वणि जस्तेन जीवनं यापितं मुदा ।।१९।।
सन्तुलने हि वित्तस्य जाते मानसिकेऽपि च ।
कामना सन्ततेर्जाताऽभ्युदयश्च तयोस्तदा ।।२०।।

उन्होंने अपनी आय का बड़ा अंश संसार में सत्यव्रत के प्रचार में लगाते रहने का निश्चय किया । श्रीसत्यनारायण भगवान की शरण में जाने से उनके जीवन में सब प्रकार सम्पन्नता आने लगी तथा जीवन का समय प्रसन्नता से बीतने लगा । उनका आर्थिक तथा मानसिक सन्तुलन सध जाने पर वह वणिक दम्पत्ति अपने मनमें सन्तानोत्पादन की इच्छा अनुभव करने लगे ।।१८-१९-२०।।

प्राप्य स्वप्ने हि निर्देशः कन्यायाः कामनां प्रति ।
सौभाग्यारयौश्चैवा चिन्हं सूनोरपेक्षया ।।२१।।
निर्देश दम्पति प्राप्य ह्याचारं प्रतिपालितौ ।
सुसंस्कारैश्च सम्पन्ना कन्या चोत्पादित सबु ।।२२।।
नाम्ना कलावती कन्या सुसंस्कारैः समन्विता ।
विहित विधिना ताभ्यां खलु समयानुसारतः ।।२३।।

ऐसी इच्छा मनमें उठने पर उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि वे पुत्र की अपेक्षा पुत्री प्राप्ति की कामना करें क्योंकि कन्या सौभाग्य और आदर का चिन्ह है ।

उन्होंने प्राप्त निर्देशानुसार नियमित जीवन क्रम अपनाकर सुसंस्कारवती कन्या को जन्म दिया । कलावती नाम की इस कन्या के शुभ संस्कार जाग्रत करने के लिए उन्होंने उसके सभी संस्कार समय-समय पर विधिपूर्वक सम्पन्न कराये ।।२१-२२-२३।।

कलावत्या स्वहृदये देहस्य पौषणौः सह ।
सद्ज्ञानस्य गुणनां च दत्वा ध्यानं विशेषतः ।।२४।।
सद्गुणानां च कन्याया विधेयं समुत्पादनम् ।
पूतं पित्रोश्च कर्तव्यं शिष्टत्व व्यवहारयोः ।।२५।।
यदा वयस्का सा जाता शिक्षित परिवारिणा ।
यूना सगुणवता साकं सारव्यनवनोद्वाहिता ।।२६।।

कलावती के लिए शारीरिक पोषण की समुचित व्यवस्था बनाने के साथ-साथ उसके ज्ञान और गुण के विकास पर भी पूरा ध्यान दिया गया । कन्या को श्रेष्ठ गुण और क्षमताओं से सम्पन्न, शिष्ट, व्यवहार में कुशल बनाना माता-पिता का पवित्र कर्तव्य है । कन्या कलावती के वयस्क और सुशिक्षित हो जाने पर उन्होंने उसका विवाह एक कुलीन परिवार के गुणवान युवक के साथ सम्पन्न कर दिया ।।२४-२५-२६।।

पुत्रवद् वणिजा तेन युवकः शिक्षितस्तदा ।
सद्धर्मस्य विधानेषु व्यापार नियमेषुच ।।२७।।
आवश्यकं पदार्थानां समये समुत्पादनं ।
श्रमेण कौशलेनापि कर्त्तव्य मवधानतः ।।२८।।
स्वहितेन सह क्रेतुर्वत्स चिन्तयति हितम् ।
यस्तं रक्षत्यवहितो व्यापारी सत्य एव सः ।।२९।।

वैश्य ने उस होनहार युवक को अपने पुत्र की तरह मानकर स्वधर्म पालन तथा व्यापार संचालन के नियम सिखाये । साधु वैश्य ने उसे समझाया कि समाज की

आवश्यकतानुसार वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में उत्पादन और विक्रय श्रमपूर्वक सावधानी एवं कुशलता से किया जाना चाहिए। जो वैश्य अपने हित के साथ खरीददार के हितों की भी रक्षा करता है, वही सच्चे अर्थों में व्यापारी कहलाता है ।।२७-२८-२९।।

उभावेवं वैश्य धर्मं पालयन्तौ हि नित्यशः ।
उन्नतिं लब्धवन्तौ च सहकारित्व साधनात् ।।३०।।

साधु उवाच-

बहुधा चात्र साफल्यं समृद्धिर्व्यवसायिनाम् ।
लक्ष्याद् भ्रंशयति नूनं तज्जातं वणिज्योऽपि सह ।।३१।।
बहुषो बोधितः पत्न्या सत्कार्येऽथ सद्व्ययः ।
चोपेक्षितं तेन सर्व विस्मृतं कल्पितं पुरा ।।३२।।

वे दोनों वैश्य धर्म का पालन करते हुए, सहकारिता का निर्वाह करते हुए सतत् उन्नति और सफलता प्राप्त करने लगे। सफलता और समृद्धि कई बार मनुष्य को अपने लक्ष्य से विचलित कर देती है। इन वैश्यों के साथ भी ऐसा ही हुआ। पत्नियों द्वारा स्मरण दिलाने पर भी अपनी आय का एक अंश सत्कार्यों में लगाते रहने के संकल्प की उन्होंने उपेक्षा कर दी ।।३०-३१-३२।।

सद्गार्हस्थ्यान्निवृत्तेतु वानप्रस्थस्य जीवनम् ।
धर्माचारे समाजस्य सेवायां यापयेन्नरः ।।३३।।
वैश्यस्तु धनं लोभेनाचिन्तयदधिकं धनम् ।
जामात्रा च सहान्यत्र व्यापारार्थंतु प्रस्थितः ।।३४।।
त्यागाद्धर्मस्य कार्याणां मानवे कुप्यतीश्वरः ।
दुःखमनुभवत्येव सदा तत्कोपभाजनः ।।३५।।

नियम तो यह है कि अपने गृहस्थ सम्बन्धी उत्तरदायित्वों से निवृत्त होकर मनुष्य वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करके धर्म प्रचार तथा समाज सेवा के कार्यों में

जीवन लगा दें, किन्तु साधु को धन देखकर और अधिक धन का लालच हुआ तथा वह अपने जमाता को साथ लेकर धन कमाने निकल पड़ा । स्वधर्म के त्याग से भगवान रुष्ट होते हैं तथा उनके क्रोध के कारण जीव अनेक प्रकार के दुःखों में फँस जाता है ।।३३-३४-३५।।

साधु वैश्यः सत्यधर्मं विस्मृत्य ह्यविचारतः ।
उचितं चाप्यनुचितं कृत्वाह्यु पार्जयद्धनम् ।।३६।।
रत्नसार पुरम्यास्य सत्यनिष्ठैः प्रजाजनैः ।
राज्यधिकारिभः कारावद्धौ जातौनृपेणः सः ।।३७।।
अर्द्धांगिन्यापि कर्त्तव्यं कर्तुस नानुरोधितः ।
सापि तत्माद्‌भगवतो जाता च क्रोधभाजना ।।३८।।

साधु वैश्य की सद्‌बुद्धि क्षीण हो गई वह लोभवश उचित-अनुचित का विचार किए बिना अनीतिपूर्वक धन कमाने लगा । इस अपराध के कारण रत्नसारपुर के सत्यनिष्ठ प्रजाजनों ने उसे राज्यकर्मचारियों द्वारा बन्दी बनवा राज्याज्ञा से जेल भिजवा दिया । उसकी धर्मपत्नी ने भी पति से धर्मपालन कराने के अपने कर्तव्य को पूरा नहीं किया इससे वह भी भगवान श्रीसत्यनारायण के क्रोध का भाजन बनी ।।३६-३७-३८।।

सुखोपभोगलीनस्य चाप्यसत्कर्म-कारणः ।
सर्वा सम्पदगृहान्नूनं विलीना तस्य तत्क्षणात् ।।३९।।
दुःखेवास्त्यैव लाभोऽपित्यक्त्वाहंकृति गौरवम् ।
प्रभुं स्मरत्यनुतापं विधत्ते पापकर्मणाम् ।।४०।।
ताभ्यामितश्च तत्रापि ज्ञातं च दुःखकारणम् ।
कर्तव्यस्य विरते हि चैकमेवास्ति केवलम् ।।४१।।

लीलावती कलावती सुखोपभोग में मग्न होकर अपने सत्कर्तव्यों से विरत हो गयीं, इससे उनके घर की सारी

संचित धनराशि विलीन हो गई । दुःख आ पड़ने से एक बड़ा लाभ यह होता है कि मनुष्य अपने झूठे अहंकार और स्वार्थ को त्यागकर भगवान को याद करने लगता है और उसे अपने अनुचित कर्मों पर पश्चात्ताप होता है । इसी प्रकार कष्ट पाने से साधु नामक वैश्य और उसकी स्त्री ने अपने मन में समझ लिया कि हमारी यह दुरावस्था धर्म कर्तव्य से विमुख हो जाने के कारण ही हुई है ।।३९-४०-४१।।

स्वार्थ बुद्धिं परित्यक्त्वा परिशोध्य निजां त्रुटिम् ।
परमार्थं ततः कर्तुं जातस्तु कृत निश्चयः ।।४२।।
चन्द्रकेतोर्नृपस्याग्र स्वीकृत स्वीय विस्मृतम् ।
सत्यव्रते ततो वैश्यौ भूयोऽजनथत्प्रत्ययम् ।।४३।।

चंद्रकेतु उवाच-

असामान्योऽस्ति ते वैश्य ह्यन्याये धनार्जनम् ।
महापराधो मे राज्ये कठोरा तस्य दण्डता ।।४४।।

तब उन्होंने अपनी स्वार्थ बुद्धि छोड़कर अपनी भूलों का प्रायश्चित करने तथा अपने परमार्थ कर्तव्यों के पालन का निश्चय किया । साधु वैश्य ने राजा चन्द्रकेतु के सामने अपनी भूल स्वीकार की तथा भविष्य में सत्यनिष्ठ रहने का विश्वास दिलाया ।

राजा ने कहा-हे वैश्य ! तुम्हारा अपराध असाधारण है । अनीतिपूर्वक धन कमाने के अपराध पर मेरे राज्य में उसका कठोर दण्ड दिया जाता है ।।४२-४३-४४।।

धनिनोऽनीति कुर्वन्ति जनाश्चानुसरन्तिताः ।
व्यवस्था च समाजस्य भ्रष्टा भवति सर्वदा ।।४५।।
सन्ति कर्मकरा ये च मे राज्ये निखिला जनाः ।
वारन्ति मिथोऽनीतिं योगेन सत्यधारिणः ।।४६।।

इत्थं प्रतीयते नूनं यूयं सर्वेऽनुपातकाः ।
दीयते मन्निर्देशेन सुधारावसरः पुनः ।।४७।।

जब विभूतिवान् धनी व्यक्ति अनीति का मार्ग पकड़ लेते हैं जन सामान्य द्वारा भी वही राह अपना ली लाती है और समाज भ्रष्ट हो जाता है । मेरे राज्य कर्मचारी और प्रजाजन भी सभी सत्यनिष्ठ हैं तथा कहीं भी अनीति को पनपने नहीं देते । चूँकि ऐसा लगता है कि तुम सचमुच अपनी भूल का पश्चात्ताप कर रहे हो इसलिए तुम्हें आत्मसुधार करके सत्यव्रती बनने का अवसर दिया जाता है ।।४५–४६–४७।।

अन्यान्योपार्जनं त्यक्त्वा स्वीय मूल धनेन च ।
विधातुंच स्वव्यापारं समर्थाः सन्तु वै तथा ।।४८।।
अर्थैव कृतवान्वैश्य कृपया सत्प्रभोस्तदा ।
विपुलोपार्जनं तस्य वित्तस्य चाप्यजायत ।।४९।।
कलावत्यापि विज्ञाता लीलावत्या सह पुनः ।
विस्मृतिः स्वीकृता पूर्वयाचिता च प्रभोः क्षमा ।।५०।।

हे वैश्य ! तुमने जो अनीतिपूर्वक धन कमाया है उसको छोड़कर अपनी मूल सम्पत्ति से तुम पुनः व्यापार प्रारम्भ कर सकते हो । वैश्य ने राजाके कथनानुसार पुनः सत्यव्रती बनकर व्यापार किया तथा भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा से विपुल धन अर्जित कर लिया । उधर लीलावती तथा कलावती ने भी अपनी भूल समझी तथा भगवान श्रीसत्यनारायण से उसके लिए क्षमा याचना की ।।४८–४९–५०।।

हित्वा पूर्व विलासेन जीवन च प्रधानता ।
सेवा सद्भावयोर्दत्ता कर्मठत्वस्य च ध्रुवम् ।।५१।।
भृत्यैरपहतं सर्वमर्थं चान वधानतः ।
अस्त व्यस्तं कृतं नूनं स्वायत्ते च धृतं खलु ।।५२।।

सद्भाव वर्धनास्तत्र तत्पर त्यस्य च पनः ।
प्राप्तोऽधिकांश तेश्चार्थःजातासत्य प्रभोः कृपा ।।५३।।

उन्होंने विलासिता भरा जीवनक्रम छोड़कर कर्मठता, हर्ष, सेवा, सद्भाव को जीवन में प्रधानता दी । उनकी असावधानी के कारण घर के नौकरों ने ही धन एवं सामान को अस्त–व्यस्त करके चुरा लिया था । उन दोनों ने अपना काम सुधारा, भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा हुई और तत्परता तथा सद्भावना बढ़ने से उनका अधिकांश धन पुनः प्राप्त हो गया ।।५१–५२–५३।।

संसारेऽस्मिन्प्रभोरिच्छा सर्वापरि विराजते ।
अवबुध्येति ततः कार्य येनैव स प्रसीदति ।।५४।।
नास्ति किमपि कष्टञ्च यन्न नश्यति सर्वथा ।
प्रभोरनुग्रहल्लोके परलोकेऽपि चाथवा ।।५५।।

इस संसार में भगवान के निर्देशों को पालन करना ही सबसे प्रमुख बात है, इसलिए मनुष्य को ऐसे ही कार्य करने चाहिए जिंनसे प्रभु प्रसन्न हो । भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा प्राप्त करके मनुष्य सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाता है और परलोक में भी उसकी सद्गति होती है ।।५४–५५।।

।। इति श्रीसत्यनारायण व्रत–कथायां तृतीयोध्यायः ।।

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

।। चतुर्थ अध्याय ।।

सूत उवाच-

प्रचुरंधनमादाय स्वर्णालंकाररत्नवत् ।
नौकयासौ स्वक साधुः पुरं गन्तु मुपाक्रमत् ।।१।।
समाराधने हि सत्यनारायणस्य द्वेऽपि ते ।
तज्ज्योतिर्ज्वालने लीलावती कलावत्यौ सदा ।।२।।

सूतजी कहने लगे-अब वह साधु वैश्य बहुत-सा सोना, जवाहरात लेकर नाव द्वारा अपने नगर को चल दिया । उधर लीलावती और कलावती भी भगवान श्रीसत्यनारायण की समुचित रीति से उपासना करने लगीं ।।१-२।।

अयापयतामत्यते भक्ति-भाव पुरस्सरम् ।
कल्याणस्य कामनया स्वसमयमथापि च ।।३।।
परीक्ष्यते भगवता मानवानां हि कर्मसु ।
यदस्ति वास्तविकताऽवास्तविकत्वमेवा वा ।।४।।
छद्मान्वितोऽनभीष्टश्च शुद्धिश्चाति प्रियः प्रभोः ।
सदा विशुद्ध भावेन प्रीणाति जगदीश्वरः ।।५।।

उनका अधिकांश समय धर्म और परोपकार के कार्यों में ही लगता था और वे हृदय से सत्यव्रत का पालन कर रही थीं । भगवान हमेशा मनुष्य के कर्मों की परीक्षा किया करते हैं कि इसके विचारों में कुछ सच्चाई है या कोरा नकलीपन ही है । कपटी और झूठा मनुष्य भगवान को कभी स्वीकार नहीं होता, वे तो सच्चे व्यक्ति से ही प्रेम रखते हैं । हृदय की शुद्ध भावनाएँ ही उस जगत्पति को सबसे अधिक पसन्द आती हैं ।।३-४-५।।

कृत्रिम ग्लायति तुष्टो वास्तविकच्च मानवात् ।
वचनाडम्बरैर्नापि प्रसन्नश्चास्ति कर्मभिः ।।६।।
सेवया दुःख दीनानां प्रीतिमाप्नोति वे प्रभुः ।
अप्रिय मन्यते चासौ साधु पुरुषोत्पीड़नम् ।।७।।
मत्वा साक्षात्प्रभो रूपं सतां साहाय्य सद्व्रती ।
सत्य व्रतेन कर्त्तव्ये बालोत्पीड़ित सन्नृणाम् ।।८।।

भगवान दिखावटीपन से विरत रहते हैं और यथार्थ कर्मों से ही प्रसन्न होते हैं । उन्हें केवल बातों के आडम्बर से प्रसन्न नहीं किया जा सकता । दुःखी और दीन की सेवा सहायता करने वाले भगवान को प्रिय हैं तथा सत्पुरुषों को सताने वाले उन्हें कष्ट–दुःख पहुँचाते हैं । सत्व्रती को चाहिए कि वह बालक, पीड़ित व्यक्ति तथा सत्कार्य परायण पुरुष को प्रभु रूप मानकर उसकी यथाशक्ति सेवा–सहायता करे ।।६–७–८।।

साधुः परिक्षितः य सत्य–निष्ठायां यत्र स वणिक् ।
प्रभुणाः तर्हि वयसा वृद्ध ऋषित्वमुपेत्य वै ।।९।।

ऋषि उवाच–

सान्निध्ये वर्त्तते वैश्य ! सेवाश्रमस्तु यत्र हि ।
साधनैः शिक्षणैश्चापि निर्माणं जायते सताम् ।।१०।।
सर्वांगीण–विकासाय पूर्णता ब्रह्मचारिण ।
बुद्धिमान शरीराणांचलत्येव गुरोः कुलम् ।।११।।

भगवान ने एक गुरुकुल संचालन करने वाले ऋषि के रूप में साधु वैश्य के पास पहुँच कर उसकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा ली । ऋषि बोले–हे महानुभाव ! यहाँ निकट ही एक आश्रम है, जिसमें मनुष्यों को आध्यात्मिक साधना तथा शिक्षण द्वारा श्रेष्ठ जीवन का अधिकारी बनाया जाता है । ब्रह्मचारियों के सर्वांगीण शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए

गुरुकुल चलता है ।।९–१०–११।।

वानप्रस्थाश्च शिक्ष्यन्ते बहुशः सन्तु ते क्षमाः ।
साधनायाः सशिक्षाभि लोकसेवात्म–श्रेयसे ।।१२।।
रचनात्मक कार्येषु ज्ञानस्य चेह प्रसृतौ ।
समाज सेविनां कृते क्रियते मार्ग दर्शनम् ।।१३।।
यत्नेनैव विधीयते सत्यधर्मस्य पालनं ।
कर्तुं जनोन्नतिं चात्र समुच्चस्तरमास्मिकम् ।।१४।।

वानप्रस्थों में साधना, स्वाध्याय, शिक्षण तथा अभ्यास द्वारा लोकमंगल एवं आत्म–कल्याण कर सकने की क्षमता विकसित की जाती है । समाजसेवियों को ज्ञान का प्रसार एवं रचनात्मक कार्यों का मार्गदर्शन, प्रशिक्षण एवं सहायोग भी यहाँ उपलब्ध होता है । समाज को समुन्नत बनाने तथा मनुष्यों का आत्मिक स्तर ऊँचा उठाने में इस आश्रम का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है ।।१२–१३–१४।।

त्वं सत्यस्य व्रती चासि श्रुतं श्रद्धान्वितमिति ।
सत्कार्येषु धनं योज्यं विधिरेष सुसंस्कृताम् ।।१५।।
धनं सहायतार्थं तु स्वीयं सामर्थ्य श्रद्धया ।
प्रदातुं शक्यते चात्र भवत यदि रोचते ।।१६।।
प्रदर्शितं च वैश्यैन कार्पण्य पुनरेव तत् ।
धर्मार्थमपि लाभश्च न तु स्वल्पीकृतः खलु ।।१७।।

सत्कार्यों में सुसंस्कारी तथा श्रद्धायुक्त धन ही लगाने का नियम है । हमने सुना है कि आप सत्यव्रत के पालन करने वाले हैं । अतः आप चाहें तो अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार इस आश्रम के संचालन हेतु स्वेच्छा से सहयोग दे सकते हैं । किन्तु साधु वैश्य पुनः लोभ के वशीभूत हो गया । धर्म कार्यों के लिए भी उसका अर्थमोह बाधक बन गया ।।१५–१६–१७।।

निषेधो विहितस्तेन विस्पष्ट वचनस्तदा ।
अदूरदर्शितत्वेन ह्यविचिन्त्य परम्पराम् ।।१८।।
सत्यहीन धनस्यापि लोभो मज्जयति नरम् ।
कोपस्य भाजनं जातो वैश्यस्तुच्छधिया प्रभो ।।१९।।
भूवा दुर्घटना ग्रस्ता नौका भग्नाह्यभूत्तदा ।
प्रयासैर्नाविकानां च सजायो रक्षितोऽभवत् ।।२०।।

उसने ऋषि को सहायता देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और अपनी अदूर्दर्िता के कारण पिछले प्रसंगों को एकदम भुला दिया । लोभ और अदूरदर्शिता मनुष्य को डुबो ही देते हैं । साधु वैश्य अपनी तुच्छ बुद्धि के कारण भगवान का कोप भाजन बन गया । उसकी नौका दुर्घटनाग्रस्त होकर समस्त धन सहित डूब गई । नाविकों के प्रयासों से साधु वैश्य दामाद सहित किसी प्रकार बच गया ।।१८-१९-२०।।

धनेनं दुर्मदान्धानां सा नेत्रोन्मीलनाय हि ।
अस्तीति चोच्यते लोके विपत्तिः परमाञ्जनम् ।।२१।।
तदा तेन प्रतिज्ञातं दृष्टं तज्जीवने पुनः ।
अपेक्षितोपयोगाच्च देयमतिरिक्तं धनम् ।।२२।।
ऋषि तमेव सम्प्राप्तो ज्ञात्वा वैश्यः स्व विस्मृतिम् ।
ज्ञापयन्स्वीयसंकल्प याचिता तत्सहायता ।।२३।।

कहा गया है कि धन के मद में जो विवेक की दृष्टि से अन्धा हो गया हो ऐसे व्यक्ति के लिए विपत्ति अंजन का काम करती है । साधु वैश्य को भी अपनी भूल का ध्यान हुआ और उसने संकल्प किया कि अपनी आवश्यकता की पूर्ति से जो धन बचेगा वह सबका सब सत्यव्रत-पालन और प्रचार में लगायेगा । वह उन्हीं ऋषि के पास पहुँचा, अपनी भूल स्वीकार की तथा अपना संकल्प बताकर सहायता माँगी ।।२१-२२-२३।।

लोभादसत्यमाश्रित्य त्यक्तवान् पात्रता स्वयम् ।
नव्यर्थस्ते सु संकल्पो भविष्यति न संशय ।।२४।।
इयं हि राष्ट्र सम्पत्तिः प्राप्ता नाश न शक्यते ।
अतरतां तु समुद्धर्त्तु वयं च प्रयतामहे ।।२५।।
बुद्धि सेवा–पराणां च वित्तं सर्वनदी तलात् ।
निः सृतं स प्रयासेन मनोयोगेन वासिनाम् ।।२६।।

ऋषि बोले–धन के लोभ से झूठ बोलकर तुमने अपनी पवित्रता खो दी है । किन्तु तुम्हारा शुभ संकल्प भी निरर्थक नहीं जाएगा । सम्पत्ति सब राष्ट्र की होती है, उसे जल में डूबकर नष्ट नहीं होने दिया जा सकता इसलिए हम उसे निकालने का प्रयास करते हैं और बुद्धिमान सेवा परायण तथा परिश्रमी आश्रमवासियों के मनोयोगपूर्ण प्रयास से सारा धन नदी तल से निकाल लिया गया ।।२४–२५–२६।।

ऋषि पार्थितवान्वैश्यो व्यक्तकुर्बनुकृतज्ञताम् ।
आश्रमस्योपकारार्थं नेतु स्व प्रचुरं धनम् ।।२७।।
मया पुरार्थितो योगी ज्ञात्वां त्वां सत्य धर्मिणम् ।
किन्त्वद्य मूल्य स्वीकारः साहाष्टयेचापिनोचितः ।।२८।।
गृहाण स्वधनं वैश्य चिन्तय कर्म मानसम् ।
अनुसत्य स्व संकल्पं सूपयोगो विधीयताम् ।।२९।।

तब वैश्य ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए ऋषि के आश्रम के लिए उस धनराशि में से धन स्वीकार करने का आग्रह किया । ऋषि ने कहा–पहले हमने तुम्हें सत्यधर्म का साधक समझकर सहयोग माँगा था अब तुम्हारी सहायता के बदले कुछ भी स्वीकार करना अनुचित होगा । हे वैश्य ! तुम अपना धन स्वयं संभालो, किन्तु अपने संकल्प के अनुसार उसके सदुपयोग की बात बराबर ध्यान में रखना ।।२७–२८–२९।।

निर्मलं हृदयं जातं साधौः पूर्व हि तत्त्वलु ।
अस्वीकारेण चार्थस्य दुःखितःसोऽब्रवीच्चतम् ।।३०।।

ऋषे ! ममातिपापेन राष्ट्रसम्पत्तु मज्जिता ।
उद्धारस्तव पुण्येन तवैवेयं सुनिश्चिता ।।३१।।
एवमुक्त्वा साधुवैश्यः प्रणम्यः पादयोर्गतः ।
धनं सन्त्यज्य सत्रैव प्रयातुमुद्यतोऽभवत् ।।३२।।

साधु वैश्य का हृदय निर्मल हो चुका था—ऋषि द्वारा धन अस्वीकार किये जाने से वह अत्यन्त दुःखी होकर बोला—हे ऋषिवर ! मेरे पाप कर्मों ने तो राष्ट्र की इस सम्पत्ति को डुबो ही दिया था, आप सबके पुण्य ने इसे पुनः उबारा है इसलिए यह सब धन आपका ही है, मेरा नहीं । ऐसा कहकर ऋषि के चरणों में प्रणाम करके वह सारा धन वहीं छोड़कर चलने को उद्यत हो गया ।।३०—३१—३२।।

ऋषिस्तदा प्रहृष्टोऽभूदालोक्य श्रुत भावनाम् ।
तत्कालापेक्षया किञ्चित्स्वीकृतमाश्रमस्य तत् ।।३३।।
कृत्वां संरक्षकं शेष निजस्याज्ञापितो हि सः ।
वर्धयितुं तद् व्यापारैश्चोपवतुं सुकर्मसु ।।३४।।
प्रभूक्तिवद्ऋषेर्वाक्यं कृत्वा शिरसि श्रद्धया ।
गृहं पुनः प्रयातः स जमात्रा सह हर्षितः ।।३५।।

ऋषि उसकी पवित्र भावना का प्रमाण पाकर सन्तुष्ट हुए और आश्रम की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार कुछ धन उन्होंने स्वीकार कर लिया । उन्होंने साधु को आज्ञा दी कि शेष धन को वह राष्ट्र की धरोहर माने तथा उसका संरक्षक बनकर, व्यापार द्वारा उसे बढ़ाने और राष्ट्रहित में लगाते रहने का क्रम अपनाये । वैश्य ने ऋषि वचन को भगवान का आदेश मानकर शिरोधार्य किया तथा दामाद सहित घर लौट गया ।।३३—३४—३५।।

भूत्वा सत्यनिष्ठौ तौ वर्धने जन सम्पदाम् ।
पूर्णे स्वजीवने जातौ सुख—सौभाग्य भागिनौ ।।३६।।

धनं निर्वाहमात्रं च गृहीत्वा निखिलं पुनः ।
तत्प्रचारे विनियुज्य सर्वे सुखपवाप्नुवन् ।।३७।।
तेषां प्रयत्नैरधिका जाता धर्म–प्रवृत्तयः ।
गन्तुभसख्याः सन्मार्ग प्रेरिता मानवास्ततः ।।३८।।

उसके बाद वे जीवन भर निष्ठापूर्वक सत्यव्रती बने रहकर, समाज की समृद्धि बढ़ाते रहे तथा स्वयं भी सुख, यश और पुण्य के भागी बने । सामान्य व्यक्ति की तरह निर्वाह मात्र का धन अपने लिए खर्च करके शेष सब सत्प्रवृत्तियों के प्रसार में लगाने लगे । उनके सत्प्रयासों से समाज में धर्म प्रवृत्तियाँ बढ़ीं और असंख्य व्यक्तियों ने सन्मार्ग की प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक बनाया ।।३६–३७–३८।।

प्रभुश्च प्रीतिमापन्नो विधिधैः शुभकर्मभिः ।
सत्यनारायणस्यापि जातास्ते प्रीति भाजनाः ।।३९।।
लीलावती कलावत्यौ लोके स्वपतिभ्यां सह ।
लब्ध्वा चाति सौख्यशान्ति सत्येऽन्ते परम सुखम् ।।४०।।
अनिर्वाच्यो हि महिमा सत्यस्य सर्वसौख्यदा ।
कल्याणं जायते नृणां तस्यैव शरणागतौ ।।४१।।

भगवान विविध शुभ कर्म करने वालों से प्रसन्न होते हैं । ऐसे व्यक्ति भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा के अधिकारी बनते हैं । लीलावती कलावती भी अपने पतियों के साथ इस लोक में सुख सौभाग्य पाती रहीं और अन्त में परमसुख की अधिकारिणी बनीं । भगवान श्रीसत्यनारायण की महिमा अपरम्पार है उनकी शरण में जाने से मनुष्य सभी प्रकार के सुख तथा कल्याण के अधिकारी बन जाते हैं ।।३९–४०–४१।।

।। इति श्रीसत्यनारायण व्रत–कथायां चतुर्थोध्यायः ।।

श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

।। पंचमोऽध्याय ।।

सूत उवाच-

अथान्यत्संप्रवक्षामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
आसीत्तुंगध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः ।।१।।
नृपस्य राज कार्येषु रुचिरूत्पन्ना तेन तु ।
अज्ञानात्सत्य धर्मस्य ज्ञातुं मर्म ह्य पेक्षितम् ।।२।।

सूतजी कहने लगे-हे मुनियो ! और आगे की कथा भी मैं कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो । किसी समय तुंगध्वज नाम का प्रजा पालक राजा राज्य करता था । उसकी राजकाज में रुचि तो थी किन्तु सत्य धर्म का मर्म न समझने से उस दिशा में उपेक्षा बरतता था ।।१-२।।

नृपतिरेकदांचासौ त्वं यं राज्यं निरीक्षितुम् ।
ज्ञानं च सुख दुःखानि प्रजाया बहिरभ्रमत् ।।३।।
तत्र वट-तलेऽपश्यद्‌वने गोपगणाश्च सः ।
धारयितुं सत्यव्रतं धर्मानुष्ठानं कुर्वतः ।।४।।
प्रज्ञा बल युतैश्चापि विद्यासत्ता धनान्वितौ ।
योगदान च कर्त्तव्यं सत्प्रतिष्ठान-कर्मणि ।।५।।

एक बार वह प्रजा की स्थिति की जानकारी करने के उद्‌देश्य से अपने राज्य का निरीक्षण करने निकला । उसने एक स्थान पर वट वृक्ष ने नीचे गोप परिवारों को एकत्रित देखा जो सत्यव्रत के पालक थे और उस समय धर्मानुष्ठान में लगे थे । समाज में जो व्यक्ति बुद्धि, बल, सत्ता, सम्पत्ति और विद्या से सम्पन्न हों, उनका कर्तव्य है

कि अवसर मिलने पर सत्यधर्म की प्रतिष्ठा में आवश्यक सहयोग करें ।।३–४–५।।

योगदानमपि पुण्यं बुद्धिश्रम–धनादिभिः ।
सत्कर्मसु भवत्येव तदवश्यं कुर्यान्नरः ।।६।।
अकुर्वन्ननुरोधं ते गोप गत्वा नृपान्तिके ।
गृहीतुं तत्प्रसादे च भाग नेतुं तदर्चने ।।७।।
ज्ञात्वा नीच कुलोत्पन्नान्तेषा सान्निध्यमेव च ।
दोषहि ज्ञायते राजा स्पर्श मात्रादपि तदा ।।८।।

सत्यकार्य में बुद्धि से, श्रम द्वारा अथवा धन के माध्यम से सहयोग करना पुण्य कार्य है जो अवश्य किया जाना चाहिए । गोपगणों ने राजा के पास जाकर उस धर्मायोजन में भाग लेने तथा प्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध किया किन्तु राजा ने उन्हें नीच कुल में उत्पन्न समझकर उनके साथ बैठने और उन्हें स्पर्श करने में भी अपना दोष माना ।।६–७–८।।

दर्पादुन्मुच्य धर्मस्य महदायोजनं नृपः ।
चाग्रह गोपावालानां निवृतः स्वगृहं प्रति ।।९।।
सत्पद्धतिं परित्यज्य योनरोऽस्त्यसन्मार्गगः ।
स तु सत्यप्रभोर्नूनं जायते कोप–भाजनः ।।१०।।
अवहेलनया सत्य–धर्मस्य चापि भूपतेः ।
भिन्ना परिजना जाता ये ह्यासत्कर्म कारिणः ।।११।।

इसलिए अहंकार के वशीभूत वह राजा गोपगणों का आग्रह ठुकराकर तथा धर्मायोजन की उपेक्षा करके अपने निवास स्थान को लौट गया । जो व्यक्ति सत् को छोड़कर असत् के मार्ग पर चलता है, उसे भगवान श्रीसत्यनारायण के कोप का सामना करना पड़ता है । राजा के द्वारा सत्यकर्तव्यों की अवहेलना के कारण राज–परिवार और राज कर्मचारी भी उससे विमुख हो गये ।।९–१०–११।।

कटुत्वं कलहो द्वेषो व्यसनालस्यस्वार्थ काः ।
समुद्भूताः स्वभावे च नृपस्य स्वयमेव हि ।।१२।।
भगवतोऽवज्ञया तत्र सत्यनारायण प्रभोः ।
व्यवस्था निखिला जाता लुप्तप्राया श्री सम्पदः ।।१३।।
समागत विपत्तेश्च निमित्त च तस्या नृपः ।
ज्ञातवान यदहंकार-कर्तव्य-च्युतिस्वार्थता ।।१४।।

कलह, कटुता, द्वेष, आलस्य, स्वार्थ एवं व्यसनादिक घातक दोष उन सबके प्रयासों में प्रविष्ट हो गए । भगवान श्रीसत्यनारायण की अवज्ञा के फलस्वरूप सारी व्यवस्थायें बिगड़ गईं तथा राजा का धन-सम्मान लुप्त हो गया । इस प्रकार विपत्ति आने पर राजा ने विचार किया तो उसे अपने अहंकारग्रस्त तथा कर्तव्य विमुख होने का ध्यान आया ।।१२-१३-१४।।

विलोक्य दुर्दशां स्वीयामकुर्वन्दोषिणोऽपरान् ।
भूपो विश्लेषणां स्वस्य कृतवान्स्वयमेव च ।।१५।।
बुद्धयाचावगतं तेन सद्धर्मोपेक्षया मम् ।
अधोऽधः पतनं जातं नान्यदत्र च कारणम् ।।१६।।
विपदो वारयितुं दूरं सत्यानुभवशालिनः ।
उचितं निश्चितं तेन प्रलब्धुं मार्गदर्शनम् ।।१७।।

बुद्धिमान राजा ने अपनी इस दुर्दशा के लिए किसी अन्य को दोष न देकर स्वयं आत्म विश्लेषण किया । उसकी समझ में यह तथ्य आ गया कि उसके द्वारा सत्य धर्म की उपेक्षा होने से ही यह पतन हुआ है । ऐसी स्थिति में विपत्ति निवारण के लिए किसी अनुभवी सत्यव्रती से मार्गदर्शन प्राप्त करना ही राजा ने उचित समझा ।।१५-१६-१७।।

अपमानं कृतं पूर्व तिरस्कृत्येति गोपकान् ।
ध्यात्वा तेषां समीपे च ह्यनुतप्तो गतो नृपः ।।१८।।

श्रूयतां मे वचो वाला ! च्युतोऽस्मि सत्यधर्मतः ।
राजा उवाच—
नेतुं प्रकाशमायातो भूयो युष्मत्सुसन्निधौ ।।१९।।
सर्व साधन युक्तोऽपि भूत्वा विस्मरणैश्च मे ।
नरक तुल्योऽभवत्नूनं परिवारोऽखिलो मम ।।२०।।

राजा को गोपगणों की याद आई । अपने द्वारा उनकी उपेक्षा किये जाने का पश्चात्ताप करने राजा उनके पास स्वयं गया ।

राजा ने कहा—हे गोपगणो ! मैं सत्यधर्म से गिर जाने के कारण दुःख में फँस गया हूँ और आप लोगों के पास मार्गदर्शन की आशा से आया हूँ । मेरी भूलों के कारण सब प्रकार से साधन सम्पन्न होते हुए भी मेरा परिवार नरक तुल्य बन गया है ।।१८—१९—२०।।

विनाशाद्राज कार्याणां प्रतिष्ठायाश्च नाशनात् ।
जीवन्नपि मृत्यु तुल्यं कष्टं च प्राप्तवानहम् ।।२१।।
भवन्तः सुखिनः सर्वे परिवारः सह सदा ।
कुर्वन्तः प्रगतिं नित्यं जिज्ञासा मे तन्मर्मणः ।।२२।।
अहंकारोचितातत्र त्रुटिश्चाभूत्तदा मम ।
तस्या हि शोधनच्छा मे पर्याप्तं दण्डमाप्तवान ।।२३।।

राज व्यवस्था अस्त—व्यस्त हो जाने और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने के कारण मैं जीवित होते हुए भी मरणासन्न कष्ट पा रहा हूँ । आपके परिवार सामान्य स्थिति में सुखी हैं और बराबर प्रगति कर रहे हैं, इस बात का मर्म समझने की मेरी जिज्ञासा है । पिछली बार मुझसे जो अहंकारवश भूल हुई उसका पर्याप्त दण्ड मैं पा चुका हूँ और अब उसका सुधार कर लेने की मेरी हार्दिक इच्छा है ।।२१—२२—२३।।

तेषां विवेकशीलेन ह्येकेन कथितं नृप ।
स्वदोष–दुर्गुण एव निमित्तमज्ञातापदाम् ।।२४।।
दोषान्वारयितुं त्वं हियो मार्गोह्यात्मसात्कृतः ।
त्वयाहि स्वीकृत स भविष्यति कल्याण कृत ।।२५।।
सदा सत्यस्वरूपोऽस्ति प्रभुर्वै निश्चितं नृप ।
ज्ञातुं स सत्यधर्मं हि ददात्यवसरं नृणाम् ।।२६।।

उनमें से एक विवेकवान ने राजा से कहा कि अपने ऊपर आने वाली विपत्तियों के प्रधान कारण अपने स्वयं के दोष ही होते हैं । आपने अपने दोषों के निवारण द्वारा विपत्ति निवारण का जो मार्ग अपनाया है वह अवश्य कल्याणप्रद सिद्ध होगा । हे राजन् ! भगवान सत्य स्वरूप हैं और वे हर व्यक्ति को सत्यधर्म समझने तथा उसका अनुसरण करने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं ।।२४–२५–२६।।

अहंकारं वशाल्लोके उपेक्षन्ते नरास्तु तान् ।
पतन्ति ते भवानिव विपदां घोर सागरे ।।२७।।
कार्याहि सत्यव्रतिना त्यक्त्वा भेदस्य भावनाम् ।
वृत्तिर्ग्रहीतुं श्रेष्ठानि तत्वानिप्रति स्थानतः ।।२८।।
अस्माकं परिवारेषु य सुखं तोषः दृश्यते ।
तत्तु सत्य प्रभो सर्व वर्त्तते सत्कृपा–फलम् ।।२९।।

लोग अपने मिथ्या, अहंकार के वशीभूत होकर उन अवसरों की उपेक्षा करके आपकी ही भाँति घोर विपत्ति में आ जाते हैं । सत्य मार्ग अपनाने वाले को चहिए कि वह भेदभाव छोड़कर श्रेष्ठ तत्व जहाँ से भी प्राप्त हो सकता हो, वहाँ से प्राप्त करे । आपको हमारे परिवारों में जो सुख और सन्तोष दिखाई देता है, वह सब निश्चित रूप से भगवान श्रीसत्यनारायण की ही कृपा का फल है ।।२७–२८–२९।।

परिवारेषु चास्माकं भरणैः—पोषणः सह ।
कर्त्तुं प्रदीयते ध्यानं प्रत्येकं च सुसंस्कृतम् ।।३०।।
न केवलाद्धि कथनात् सिद्धान्ताः श्रवणच्यते ।
लाभदाः किलाचरणेऽभ्यासेनैव भवन्ति च ।।३१।।
विधातुं सत्य व्रतिनः सर्वोच्च प्रयतामहे ।
वयं निर्मायोपयुक्तं वातावरणं तत्र वै ।।३२।।

हमारे परिवार में हर सदस्य के भरण—पोषण के साथ—साथ उसको सुसंस्कारवान् बनाने पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है । श्रेष्ठ सिद्धान्त केवल कहने—सुनने से लाभ नहीं पहुँचाते, इसके लिए उन्हें सतत् अभ्यास द्वारा आचरण में लाना पड़ता है । हम परिजनों को सत्यव्रतशील बनाने के लिए प्रयासपूर्वक पारिवारिक वातावरण उसके अनुकूल बनाये रखते हैं ।।३०—३१—३२।।

सदभ्यस्ता विधीयन्ते येन योग्या भवन्तु वे ।
कृते स्वात्मजनानां च हिताय सुखदाः सदा ।।३३।।
सत्यव्रत प्रभावेण व्यसनालस्यादिकान्वै ।
विहाय सन्ति संयुक्ताः स्नेहानुभूति कर्मभि ।।३४।।
स्वात्म योग्यतया स्वीय—परिवाराय चाधिकम् ।
लाभं दातुं समुत्साहः सर्वेषु भवति ध्रुवः ।।३५।।

परिवार के हर सदस्य के वास्तविक हित को ध्यान में रखकर उसे सत्यधर्म के अनुरूप अभ्यास कराया जाता है । राजन् सत्यव्रत के प्रभाव से ही हमारे परिवार के सदस्य आलस्य और व्यसनादि से मुक्त होकर स्नेह, सहानुभूति और कर्मठता आदि गुणों से युक्त हैं । अपनी योग्यता के द्वारा सारे परिवार को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का उत्साह हर सदस्य के अन्दर बना ही रहता है ।।३३—३४—३५।।

अवबुध्य स्वकंराजन् कर्त्तव्यांच मनीषया ।
धर्म–प्रदर्शनं त्यक्त्वा पालयेत्सत्यधर्मकम् ।।३६।।
एवं कृते स्वयं सत्य प्रभारेनु ग्रहेण च ।
कष्टानिच प्रणश्यन्ति जीवन लाभोनिश्चितम् ।।३७।।
सत्यज्ञान श्रुतं राज्ञा मननं च कृतं तदा ।
निर्धारितरततश्चैव रुचिरः जीवन–क्रम ।।३८।।

हे राजन् ! आप भी अपने कर्तव्य को समझें तथा धार्मिकता का दिखावा छोड़कर सत्यधर्म का पालन करना प्रारंभ करें । ऐसा करने से भगवान श्रीसत्यनारायण की कृपा से आपके कष्टों का निवारण अवश्य होगा तथा जीवन लाभ प्राप्त होगा । राजा ने सत्यधर्म सम्बन्धी बातों को बड़े ध्यान से सुना तथा उन सिद्धान्तों का मनन करके तदनुकूल अपने जीवनक्रम का निर्धारण भी किया ।।३६–३७–३८।।

गोपोपदेशेनात्मानं ह्युपकृतममन्मत ।
नृपोः विभूतिः परमा ज्ञानमेवास्ति संमृतौ ।।३९।।
सत्यदेव–प्रसादेन धनपुत्रान्वितोऽभवत् ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरंययौ ।।४०।।
य इदं कुरुते सत्य–व्रतं परम–दुर्लभम् ।
श्रृणोति च कथां पुण्यां भक्तियुक्तः फलप्रदाम् ।।४१।।

राजा ने इस प्रकार सत्यधर्म का ज्ञान कराने वाले गोपों का उपकार माना तथा उसे विश्वास हो गया कि ज्ञान भव–बन्धन से मुक्त कर सकता है । उसी के अनुसार आचरण करके राजा प्रभु की अनुकम्पा से परिवार सहित धनधान्य तथा सुख भोगकर अन्त में सत्यलोक का अधिकारी बना । सूतजी बोले–इस पुण्यप्रद कथा का भक्तिपूर्वक श्रवण करके दुर्लभ सत्य अपनाने से अद्भुत फल प्राप्त होता है ।।३९–४०–४१।।

धनधान्यादिकं तस्य भवेत्सत्यप्रसादतः ।
दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।।४२।।
भीतो भयाद्विमुच्येत सत्यमेव न संशयः ।
ईप्सितं च फलं लब्ध्वा चान्ते सत्य पुरं व्रजेत् ।।४३।।

सत्यव्रत को अपनाने वाला दरिद्र भी भगवान की कृपा से धनधान्य से पूर्ण हो जाता है और प्राणियों को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है । भयभीत लोगों को निर्भयता प्राप्त होती है । साधक संसार में इच्छित फल प्राप्त करके अन्त समय में सत्य लोक में स्थान पा लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।।४२–४३।।

।। इति श्रीसत्यनारायण व्रत–कथायां पंचमोध्यायः ।।

श्रीसत्यनारायणजी की आरती

सत्यमय नारायण स्वामी, सत्यमय नारायण स्वामी ।
सुख सम्पत्ति पावे तव व्रत अनुगामी ।।
सुख सागर, गुण नागर देवा भक्ति ज्ञान दाता ।
निराकार ॐकार ज्ञान घन भव वारिध त्राता ।।
अखिल विश्वव्यापी अगोचर नूतन भाव भरो ।
काम, क्रोध मद, लोभ, मोह, भय तृष्णा दूर करो ।।
दया, शील, सन्तोष, मित्रता, बल, विवेक दायी ।
अभय मोक्ष पद पावे नित सन अनुयायी ।।
आलस, पाप, अविद्या, नाशे, बैर भाव बिसरे ।
शौर्य शक्ति, आरोग्य मिले, सब दुःख दारिद्र्य तरे ।।
हे ! शाश्वत, अज ब्रह्मज्ञान धन, दोष हरो देवा ।
पुण्य प्रताप बढ़ाओ करें धर्म सेवा ।।
तुम समान तप और न कोई दया दृष्टि करिये ।
उर के काम विकार नाथ सब पलभर में हरिये ।।
कृपा सिन्धु दुःख हर्ता जग पालन कर्त्ता ।
चरण–शरण प्रभु दीजै कलिमल संहर्त्ता ।।
सत्य पढ़ें सच बोलें हम हों सद्‌विचार वाले ।
झूँठ–कपट से दूर रहें हम सत के मतवाले ।।
हाथ जोड़कर खड़े हुए हम आरत खल कामी ।
रहें सदा हे नाथ आपके सच्चे अनुगामी ।।
सत्यमय नारायण स्वामी ।
जय सत्यमय नारायण स्वामी ।।

मुद्रक–युग निर्माण योजना, मथुरा

आप पढ़े-लिखे लोगों तक हमारी आवाज पहुँचा दीजिए

-आचार्य पं. श्रीराम शर्मा

हमने विचार क्रान्ति अभियान को युग साहित्य के रूप में लिखना शुरू कर दिया है और हर आदमी को स्वाध्याय करने के लिए मजबूर किया है। हमारे विचारों को आप पढ़िए और हमारी आग की चिनगारी को लोगों में फैला दीजिए। आप जीवन की वास्तविकता के सिद्धान्तों को समझिए। ख्याली दुनियाँ में से निकलिए। आपके नजदीक जितने भी आदमी हैं उनमें आप हमारे विचारों को फैला दीजिए। यह काम आप अपने काम के साथ-साथ भी कर सकते हैं। आप युग साहित्य लेकर अपने पड़ोसियों को पढ़ाना शुरू कर दीजिए। उनको हमारे विचार दीजिए। हमको आगे बढ़ने दीजिए, सम्पर्क बनाने दीजिए ताकि हम उन विचारशीलों के पास, शिक्षितों के पास जाने में समर्थ हो सकें। इससे कम में हमारा काम बनने वाला नहीं। जो हमारा विचार पढ़ेगा-समझेगा वही हमारा शिष्य है। हमारे विचार बड़े पैने हैं। दुनियाँ को हम पलट देने का दावा जो करते हैं वह सिद्धियों से नहीं, बल्कि अपने सशक्त विचारों से करते हैं। आप इन विचारों को फैलाने में हमारी सहायता कीजिए। ◉

परम वंदनीया माताजी का अपने स्वजनों के लिए

अंतिम संदेश

भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४

जिन चरणों में अपने आप को समर्पित किया, उनके बिना जीवन का एक-एक क्षण पीड़ा के पहाड़ की तरह बीत रहा है। जिस दिन उनके पास आई, उस दिन का पहला पाठ था-पीड़ित मानवता की सेवा और देव संस्कृति का पुनरोदय, सो अपने आप को उसी में घुला दिया। यद्यपि यह एक असह्य वेदना थी तथापि महाप्रयाण से पूर्व परम पूज्य गुरुदेव की आज्ञा थी कि अपने उन बालकों की अँगुली पकड़ कर उन्हें मिशन की सेवा के मार्ग पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ा दूँ जिन्हें अगले दिनों उत्तरदायित्व सँभालने हैं। पिछले चार वर्षों में मिशन जिस तरह आगे बढ़ा, वह सबके सम्मुख है, जो मैं देख रही हूँ। आगे का भविष्य तो इतना उज्ज्वल है, जिसे कल्पनातीत और चमत्कार कहा जा सकता है। उसके लिए जिस पुरुषार्थ की आवश्यकता है, हमारे बालक अब उसमें पूर्णतया प्रशिक्षित हो गए हैं।

शरीर यात्रा अब कठिन हो रही है। उनके जाने के पश्चात् से आज तक एक क्षण भी ऐसा नहीं बीता, जब वे आँखों से ओझल हुए हों। घनीभूत पीड़ा अब आँसू रोक नहीं पा रही, सो मुझे उन विराट् तक पहुँचना अनिवार्य हो गया है। यह न समझें हम स्वजनों से दूर हो जायेंगे। परम पूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म एवं कारण सत्ता में विलीन होकर हम अपने आत्मीय कुटुंबियों को अधिक प्यार बाँटेंगे, उनकी सुख-सुविधाओं में अधिक सहायक होंगे।

हमारा कार्य अब सारथी का होगा। दुष्प्रवृत्तियों से महाभारत का मोर्चा अब पूरी तरह हमारे कर्तव्यनिष्ठ बालक सँभालेंगे। सभी क्रियाकलाप न केवल पूर्ववत् संपन्न होंगे, वरन् विश्व के पाँच अरब लोगों के चिंतन, जीवन, व्यवहार, दृष्टिकोण में परिवर्तन और मानवीय संवेदना की रक्षा के लिए और अधिक तत्पर होकर कार्य करेंगे। हम तब तक रुकें नहीं, जब तक धरती पर स्वर्ग और मनुष्य में देवत्व का अभ्युदय स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर न होने लगे।

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता :** विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार :** जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक :** मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार :** जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है"।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।